गुरुत्तं

भाग-16

प्रवचनकार

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

आचार्य श्री १०८ वसुनंदी जी मुनिराज

कृति : गुरुत्तं भाग-16

मंगलाशीष : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य
श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

प्रवचनकार : परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य
श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज

संपादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

प्राप्ति स्थान : ई-16, सैक्टर-51 नोएडा (गौतमबुद्ध नगर) 201301
मो. 9971548899, 9867557668

ISBN : **978-93-94199-23-1**

संस्करण : प्रथम सन् 2022

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : स्वाध्याय

प्रकाशन : निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला समिति (रजि.) (सर्वाधिकार सुरक्षित)

मुद्रक : ईस्टर्न प्रेस
नारायणा, नई दिल्ली-110028
दूरभाष: 011-47705544
ई-मेल: info@easternpress.in

पुरोवाक्

सुई जहा ससुत्ता, णस्सदि सा पुणो वि णट्ठा वि।
एवं ससुत्त पुरिसो, ण वि णस्सदि सो पमादेण।।

जैसे धागे से युक्त सुई कहीं गिर जाए तो वह प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार सूत्र–आगम स्वाध्यायशील पुरुष अनंत संसार के प्रमाद से नष्ट–भ्रष्ट नहीं हो सकता अर्थात् संभल जाता है।

–आ. श्री कुंदकुंदस्वामी

स्वाध्याय से मानव को जीवन जीने की कला आती है अन्यथा विश्व का प्रत्येक प्राणी जी रहा है और सबके जीवन का स्तर अलग–अलग है। अपने गुरुओं के उपदेशों को नवनीत के समान जो स्वाध्याय की मथानी से मन्थन कर चखता है वह जीवन के वास्तविक परिचय को प्राप्त करता है, वही जीवन के मूलोद्देश्य को जानकर उसका सदुपयोग करता है। स्वाध्याय जीवन को वैशिष्ट्य प्रदान करता है। स्वाध्याय ही वह अंकुश है जिससे अज्ञान रूपी गज को वश में किया जा सकता है।

सुचारित्र, प्रबुद्धता, विवेकशीलता, विनम्रता आदि स्वाध्याय का ही प्रतिफल है। स्वयं के व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाने के लिए स्वाध्यायशीलता की ही आवश्यकता है। सत्साहित्यों का अध्ययन मानव को गुणों से परिपूरित कर देता है और ऐसा गुणी व्यक्तित्व ही परिवार, समाज वा राष्ट्रोत्थान में सहायक सिद्ध होता है। सत्साहित्य का अध्ययन व्यक्ति को सभाओं में, विद्वत् समुदाय में, समाज में उच्च स्थान प्रदान करता है।

प्रस्तुत पुस्तक **''गुरुत्तं भाग 16''** परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनन्दी जी मुनिराज के मीठे प्रवचनों

का संकलन है। हित, मित, मधुर शब्दों में अपने वक्तव्य को प्रस्तुत करने से आचार्य श्री के उपदेश मीठे प्रवचन के नाम से प्रख्यात हैं। आचार्य श्री की मधुरभाषिता सहज ही लोगों को आकर्षित करती है। उनकी वाणी मधुर, संयत और धर्म से विभूषित है।

तत्त्व के अवबोधक गुरुओं की वाणी लोकहितकारी होती है, उन्हीं के उपदेश से श्रावक का हित होता है, अहित दूर होकर कल्याण मार्ग के दर्शन होते हैं। आज तक आचार्यों ने अपने धर्मोपदेश से लोक को उत्तम परिणामी बनाया है और मोक्ष मार्ग से परिचित किया है। भव्य जन उनके उपदेश रूपी रथ पर आरूढ़ होकर ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र रूपी नंदन वन में प्रवेश कर जाते हैं। आत्म कल्याण के लिए गुरु की अनिवार्यता को नीतिसार में प्रतिपादित किया है–

विना गुरुभ्यो गुणवान्नरोऽपि, धर्मं न जानाति विचक्षणोऽपि।
आकर्णदीर्घोज्ज्वललोचनोऽपि, दीपं बिना पश्यति नान्धकारे।।

तीक्ष्ण बुद्धिवाला गुणवान् पुरुष भी गुरु के बिना उसी प्रकार धर्म का स्वरूप ज्ञात नहीं कर सकता जिस प्रकार कानों तक लंबे, सुंदर व निर्दोष आँखों वाला व्यक्ति यदि अन्धकार में आँखों को फाड़–फाड़ कर देखे, तो भी बिना दीपक के उसे वस्तु दृष्टिगत नहीं होती। और भी कहा है–

गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञान लोचनः।

"गुरु की ही कृपा से ज्ञान रूपी नेत्र प्राप्त होता है। गुरु के आध्यात्मिक स्पर्श, उपदेशादि से पापात्मा पुण्यात्मा बन सकता है। अधमात्मा–महात्मा व परमात्मा बन सकता है।

परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

के प्रवचन जीवन की दशा व दिशा को परिवर्तित करने वाले हैं। जहाँ इसमें 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं', 'प्रजातंत्र', भगवान् महावीर स्वामी, अहिंसा, अपरिग्रह शीर्षकों पर उपदेश दिया वहीं श्री राम का आदर्शमय जीवन व सेवा ही परम धर्म जैसे विषयों पर भी वक्तव्य देकर सामान्य जन की आत्मा के उत्कर्ष प्राप्ति हेतु मार्ग प्रदर्शित किया।

आचार्य श्री अपने उपदेशों द्वारा इह व अपर लोकों के विषय में आत्म मन्थन की छाया में नवीन उपलब्धियों से मानव समाज में चिंतन व चेतना के नवधरातल का निर्माण कर रहे हैं। अभी तक आचार्य श्री के प्रवचनों के संकलन रूप गुरुत्तं के 15 भाग पाठकों तक पहुँच चुके हैं। दिन–प्रतिदिन उसकी माँग एवं आगे के भागों का निवेदन हमें और अधिक प्रेरित व उत्साहित करता है। स्वात्म विशुद्धि व परहित के लिए इस 'गुरुत्तं–16' का संपादन आचार्य गुरुवर की कृपा से ही हमारे द्वारा किया गया है। हमारे प्रमाद वश अल्पज्ञता वश इस संपादन के कार्य में यत्किंचित् भी त्रुटि रह गई हो तो सुधी पाठक नीर–क्षीर विवेकी हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुणों का अवग्रहण करें और सारहीन नीर का परित्याग। संभव है आपका आनंद, संतोष, हित मार्ग संप्राप्ति एवं कल्याण हमारे परिणामों में विशुद्धि एवं आनन्द का निमित्त बन सके।

पुस्तक के मुद्रण, प्रकाशन एवं सहयोगी सभी धर्मस्नेही बंधुओं को पूज्य गुरुवर श्री का मंगलमय शुभाशीष।

गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे, शताधिक वर्षों तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षरशिल्पी आचार्य गुरुवर

श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध–श्रुत–आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु........।।

'जैनम् जयतु शासनम्'

श्री शुभमिति अश्विन कृष्ण अमावस्या ऊँ अर्हं नमः
श्री वीर निर्वाण संवत् 2548 **आर्यिका वर्धस्वनंदनी**
रविवार– 25.9.2022
श्री 1008 शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर
आहूरा नगर, 'सूरत'

अनुक्रमणिका

1. धम्मो मंगल–मुक्किट्ठं 8
2. प्रजातंत्र 16
3. भगवान् महावीर स्वामी 25
4. अहिंसा 34
5. अपरिग्रह 44
6. ब्रह्मचर्य 52
7. आत्मसंतोष का बीज–स्व–पर 62
8. जीवन संतुलन की तराजू 75
9. सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत ''संगठन'' 86
10. सेवा ही परम धर्म 93
11. तनु जिन मंदिर 101
12. श्री राम का आदर्शमय जीवन 109
13. पराधीन सपने हु सुख नाहि 116
14. आत्मविजय के सूत्र 124
15. चैतन्य गुण रत्नाकर 136
16. मंगलमय जीवन के चार सूत्र 144
17. जीयें तो किसके लिये? 156
18. किया बेकार नहीं जाता 162
19. तेरा अंत भला नहीं, तो तूने किया कभी भला नहीं 169
20. कल्पना और सपना 177
21. सम्यग्ज्ञान 185

धम्मो मंगल–मुक्किट्ठं

महानुभाव! संसार में जितने भी जीव हैं वे सभी जीव अपना शुभमंगल और हित चाहते हैं। ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अपना अशुभ चाहता हो, अमंगल चाहता हो, दुःख चाहता हो, अहित चाहता हो। चाहते शुभ हैं, सुख हैं, मंगल हैं हित हैं किन्तु चाहने मात्र से ये मिलता नहीं उसके लिये यथेष्ट पुरुषार्थ भी करना पड़ता है। जो वस्तु जहाँ है उसे वहाँ खोजने से वह मिलती है, जहाँ नहीं है वहाँ अनेक बार प्रयत्न करने पर भी मिलती नहीं। जैसे जल में शीतलता है वह जल में ही मिलेगी, अग्नि में ऊष्णता है वह अग्नि में ही मिलेगी, आपकी जेब में रखा हुआ पेन आपकी जेब में ही मिलेगा इसके अतिरिक्त वह कहीं नहीं मिलेगा, आपकी मुट्ठी में रखा सिक्का आपकी मुट्ठी में ही मिलेगा उसके अलावा कहीं नहीं मिलेगा, इसी तरह से मंगल, शुभ, हित और सुख का जो कारण है उस कारण के अनुसार ही उसके फल की प्राप्ति होती है। आप सभी जानते हैं जैसा बीज होता है वैसा ही वृक्ष और वैसे ही उसके फल।

भगवान् महावीर स्वामी के प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम स्वामी जी जो अनेक शास्त्रों के पारगामी थे। उन्होंने भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में पहुँचकर आत्मबोध को प्राप्त किया, यथाजात दिगम्बर अवस्था को स्वीकार करके गहन तपस्या करते हुये विशिष्ट ज्ञान अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त किया और अनेक रिद्धि–सिद्धि को प्राप्त किया। भगवान् महावीर स्वामी के उपदेश का सार उन्होंने समझा और पुनः भव्यों को समझाया जो आज वर्तमान काल में ग्रंथों में लिपिबद्ध है। भगवान् महावीर स्वामी ने कहा जीवन में मंगल करने का एक ही साधन था, है और रहेगा वह साधन है धर्म। इन्द्रभूति गौतम गणधर के

शब्दों में **"धम्मो मंगल–मुक्किट्ठं"** धर्म ही लोक में मंगल है, धर्म ही लोक में उत्कृष्ट है, धर्म ही संसारी प्राणियों के लिये शरणभूत है। जैसे नदी–झील–सागर में पतित व्यक्ति के लिये नाव सहारे की तरह से है ऐसे ही संसार सागर में पड़े व्यक्तियों के लिये धर्म नाव की तरह से है।

धर्म किसी प्राणी विशेष का मंगल नहीं करता अपितु प्राणी मात्र का मंगल करता है। धर्म किसी सम्प्रदाय आदि के लिये उत्कृष्टता प्रदान नहीं करता अपितु जीव मात्र को उत्कृष्ट बनाता है। धर्म एक जाति–सम्प्रदाय आदि के लिये शुभ नहीं करता वरन् धर्म विश्व में व्याप्त समस्त चराचर जीवों के लिये सुखकर होता है। धर्म किसी सम्प्रदाय, जाति अथवा देश की सम्पत्ति नहीं है यह प्रत्येक आत्मा की संपत्ति है। धर्म के माध्यम से बाह्य समृद्धि भी मिलती है और आध्यात्मिक वैभव भी।

नाङ्कुरः स्याद् विना बीजाद्, विना वृष्टिर्न वारिदात्।
छत्राद्विनापि नच्छाया, विना धर्मान्न सम्पदः।।

जिस प्रकार बीज के बिना अंकुर नहीं होता, बिना मेघ के वृष्टि नहीं होती, बिना छत्र के छाया नहीं होती उसी प्रकार धर्म के बिना वैभव संपदा नहीं होती।

जो व्यक्ति बाह्य समृद्धि चाहते हैं उन्हें धर्म के माध्यम से बाह्य समृद्धि मिलती है और धर्म के माध्यम से आध्यात्मिक आनंद या आत्मोत्पन्न आनंद भी प्राप्त होता है। धर्म मंगलमय है, अमंगल को हरने वाला है। धर्म प्रकाश की तरह से है जो अंधकार को नष्ट करने वाला है। धर्म सुख का पुंज है जो दुःख का अपहरण करने वाला है। धर्म आत्मा को तृप्ति देने वाला है और समस्त प्रकार की असंतुष्टि को नष्ट करने वाला है। धर्म का फल अनंत आनंद की प्राप्ति है, धर्म का फल शाश्वत वैभव को

प्राप्त करना है, धर्म का फल आत्मा की नियति को प्राप्त करना है। धर्म सीमित नहीं है वह आकाश की तरह अनंत है।

'धम्मो मंगल–मुक्किट्ठं' धर्म मंगल रूप है अमंगल रूप नहीं है। संसार में अमंगल की कामना कोई नहीं करता। अज्ञान से घिरा हुआ व्यक्ति जो मिथ्यात्व के अंधकार में भटका हुआ है, जो अपनी आत्मा को समझने में असमर्थ है, जिसने जीव को नहीं पहचाना वह व्यक्ति कदाचित् किसी आवेश में आकर के धर्म का घात करने के लिये, मानवता का संहार करने के लिये कर्त्तव्यों की इति श्री कर सकता है किन्तु जो जागरूक है, सावधान है, प्रमाद से विहीन है, जिसने मनुष्य जन्म को पहचान लिया है ऐसा व्यक्ति भूलकर भी मानवता के संहार की बात नहीं कर सकता।

आचार्यों ने धर्म के दो रूप बताये एक बहिरंग दूसरा अंतरंग। बहिरंग रूप कहलाता है व्यवहार धर्म और अन्तरंग रूप कहलाता है निश्चय धर्म। प्रत्येक वस्तु के दो रूप होते हैं अकेले बहिरंग को पकड़ने से समग्र वस्तु पकड़ में नहीं आती और बिना बहिरंग के अंतरंग पकड़ में आता नहीं। जैसे किसी ने कहा मुझे केला चाहिये तो केला उस छिलके के अंदर है, बाहर नहीं। ऐसा कोई पेड़ नहीं जिस पर बिना छिलके के केला लगने लगे। ऐसा कोई फल नहीं है जिसके ऊपर कोई आवरण न हो, चाहे नारियल हो या बादाम आदि कोई भी फल हो वह आवरण से सुरक्षित है। व्यवहार धर्म निश्चय धर्म की सुरक्षा करता है। व्यवहार धर्म के बिना निश्चय धर्म की स्थिति, वृद्धि, उत्पत्ति एवं फलदान असंभव है।

महानुभाव! आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी ने नियमसार जी ग्रंथ में कहा–

मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवायो, तस्स फलं होइ णिव्वाणं।।2।।

मार्ग और मार्ग का फल जिनशासन में यह दो बातें कहीं। मार्ग को समझ लें तो मार्ग के फल की संप्राप्ति स्वतः हो जायेगी। समीचीन मार्ग पर अविरल चलने वाला पथिक निश्चित ही अपनी मंजिल तक पहुँच जाता है, यदि मार्ग मिथ्या है तो गति कितनी भी तीव्र हो समीचीन मंजिल की प्राप्ति नहीं होती। निश्चय धर्म का आशय संक्षेप में समझें तो निश्चय अर्थात् जो पदार्थ संसार में है उस पदार्थ का उसमें ही लीन हो जाना निश्चय धर्म है। आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना, आत्मा का उपयोग आत्मा के अतिरिक्त कहीं और नहीं जाना निश्चय धर्म है।

उदाहरण के तौर पर कहें तो अभी वर्तमान काल में आप अपने घर में विद्यमान हैं, यूँ कहें निश्चय की ओर जा रहे हैं। कैसे जा रहे हैं? किसी व्यक्ति से पूछा आप कहाँ रहते हैं? उसने कहा मैं तो भारतवर्ष में रहता हूँ। अरे भाई! भारत वर्ष में कहाँ रहते हैं? मैं उत्तर प्रदेश में रहता हूँ। अरे भाई! क्या पूरे उत्तर प्रदेश में रहते हो? उत्तर प्रदेश में कहाँ रहते हो? उसने कहा मैं आगरा जनपद में रहता हूँ। क्या सारे आगरा जनपद में आप ही रहते हैं? नहीं, आगरा जनपद के शमशाबाद नगर में रहता हूँ। क्या पूरे शमशाबाद में आप ही रहते हैं? नहीं! फिर? मैं शमशाबाद के अमुक मौहल्ले में रहता हूँ। क्या आपका शरीर, आपकी आत्मा इतनी बड़ी है कि पूरे मौहल्ले में आप ही रहते हैं? नहीं। फिर कहाँ रहते हैं? जो रोड़ आगरा से शमशाबाद होते हुये राजाखेड़ा जाती है उस मेन रोड़ के चौराहे के पास अमुक मकान में रहता हूँ। क्या पूरे मकान में आप ही रहते हैं? नहीं। फिर? एक कमरे में रहता हूँ। तो उस पूरे कमरे में सिर्फ आप ही आप हैं और कुछ नहीं है क्या? नहीं नहीं उस कमरे में मेरा पलंग–अलमारी–टेबल–कुर्सी आदि सब है। तो फिर आप कहाँ रहते हैं? उसने कहा मैं उस

पलंग पर या कुर्सी पर बैठता हूँ। तो संभव है आप जिस समय उस पलंग या कुर्सी पर बैठे हों और आपके शरीर पर असंख्यात छोटे जीव भी बैठे हों, स्थूल जीव मक्खी आदि भी बैठे हों। उस व्यक्ति को उत्तर देते–देते थोड़ी झुंझुलाहट सी हुयी, उसने अपनी ओर अंगुली का इशारा करते हुये कहा मैं रहता हूँ यहाँ। प्रश्नकार ने कहा अब तुम ठीक स्थान पर पहुँच गये। यहाँ माने शरीर नहीं समझना, तुम्हारी आत्मा का आत्मा के प्रदेशों में रहना ही निश्चय धर्म है। आप जब–जब भी आत्मा के बाहर जाते हो, जब आपका उपयोग शरीर पर लगा हुआ है, आपका उपयोग भौतिक सम्पत्ति पर लगा हुआ है, आपका उपयोग स्वजन–परिजन में लगा हुआ है, जब तक आपका उपयोग अन्य सब कार्यों में लगा हुआ है तब तक आप निश्चय धर्म तक नहीं पहुँचे। और जब तक निश्चय धर्म तक पहुँचने में असमर्थ हैं तब तक प्रत्येक व्यक्ति को व्यवहार धर्म का पालन करना चाहिये। निश्चय धर्म आत्मधर्म है और व्यवहार धर्म के अनेक रूप हैं। व्यवहार धर्म का अनेक–अनेक स्थानों पर, अनेक–अनेक समय और अपने–अपने पद के अनुसार पालन किया जाता है।

राज्यं निःसचिवं गतप्रहरणं सैन्यं विनेत्रं मुखं,
वर्षा निर्जलदा धनी च कृपणो भोज्यं तथाज्यं विना।
दुःशीला दयिता सुहृन् निकृतिमान् राजा प्रतापोज्झिताः,
शिष्या भक्तिविवर्जिता न हि विना धर्मं नरः शस्यते।।

जिस प्रकार मंत्री से रहित राज्य, शस्त्र से रहित सेना, नेत्र से रहित मुख, मेघ से रहित वर्षा, उदारता से रहित धनी, घी के बिना भोजन, शीलभ्रष्ट स्त्री, मायावी स्त्री, प्रतापहीन राजा और भक्ति से रहित शिष्य प्रशंसनीय नहीं होते उसी प्रकार धर्म के बिना मनुष्य प्रशंसनीय नहीं होता।

आप एक सामाजिक प्राणी हैं, आपका एक सामाजिक धर्म है। आप एक परिवार में रहते हैं तो आपका एक पारिवारिक धर्म है, आप देश में रहते हैं तो देश के प्रति आपका एक धर्म है, आप जहाँ कार्यरत हैं वहाँ भी आपका एक धर्म है, आपकी जहाँ भी ड्यूटी है वहाँ पर निष्ठा के साथ ईमानदारी पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करना आपका धर्म है। यदि आप उसका निष्ठा से पालन नहीं कर रहे तब निःसंदेह आप अपने पद से, धर्म से कर्त्तव्य से च्युत हो रहे हैं और जो व्यक्ति अपनी ही दृष्टि से च्युत हो जाये उसे संसार का कोई व्यक्ति उठा नहीं सकता। जीवन में एक बात ध्यान रखना कभी अपनी आत्मा व अपने परमात्मा की दृष्टि में गिरना नहीं। एक बार को समाज की दृष्टि में, परिवार की दृष्टि में, दुनिया की दृष्टि में गिर भी जाओगे तो उठ जाओगे किन्तु यदि स्वात्मा व परमात्मा की दृष्टि से गिर गये तो उठना मुश्किल है।

महानुभाव! व्यवहार धर्म केवल आपसे नहीं चलता है, व्यवहार धर्म में आपको अपने समीपस्थ व्यक्तियों के प्रति कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है और आपके प्रति वे भी अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। जब आप अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं तब आप अपने अधिकारों का उपयोग करने के अधिकारी हैं यदि आप अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते हैं तो आपको किसी भी अधिकार का उपयोग करने का कोई अधिकार नहीं है। आप चाहते हैं सरकार हमारी रक्षा करे, शासन हमारी रक्षा करे, आप चाहते हैं प्रशासन द्वारा हमारे लिये इतनी अनुकूलता होनी चाहिये किन्तु ये सब माँगने से पहले ये क्यूँ नहीं पूछते अपनी आत्मा से कि आप अपने कर्त्तव्यों का कितना पालन करोगे/करते हो। क्या आप शासन की आज्ञा का पालन कर रहे हैं? क्या आप देश में रह करके देशभक्ति जो कि आपका कर्त्तव्य है उसे सही

रूप से पालन कर रहे हैं? क्या परिवार में रहकर के परिवार के प्रति आपका जो कर्त्तव्य है उसका परिपालन कर पा रहे हैं? क्या सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन सही रूप से कर पा रहे हैं? यदि नहीं कर पा रहे हैं तो निःसंदेह आप धर्म से च्युत हैं। जो धर्म से च्युत होता है उसका यह भव व परभव दोनों ही बिगड़ जाते हैं।

एक मजदूर ईमानदारी से निष्ठापूर्वक अपने मालिक के यहाँ काम कर रहा है और जितना काम करता है उतना ही धन लेता है, वह धर्मात्मा है, वह धर्मी है। वह कहता है बाबू जी! आज मैंने छः घण्टे काम किया है मुझे 8 घण्टे के नहीं छः घंटे के पैसे चाहिये, यह ईमानदारी होनी चाहिये। जो मजदूर पत्थर तोड़ रहा है, जो मजदूर वृक्ष की सिंचाई कर रहा है, एक व्यक्ति मार्ग के काँटों को अलग कर रहा है वह निष्ठावान्–धर्मात्मा हो सकता है यदि कोई व्यक्ति उच्चपद पर आसीन होकर भी अपने कर्त्तव्य का निष्ठा से पालन नहीं करता है तब वह कर्त्तव्यच्युत है। प्यासे को पानी पिलाना भी धर्म है, भूखे को भोजन कराना भी धर्म है, रोगी का उचित उपचार कराना भी धर्म है। धर्म जब शरीर की रक्षा करने वाला उपकारक है तब आत्मा की रक्षा करने वाला धर्म महान् उपकारक है।

एक परिवार को नियंत्रित करना बड़ा मुश्किल होता है, परिवार का एक मुखिया अपने परिवार के चार लोगों को नियंत्रित नहीं कर पा रहा। उसके दो पुत्र–पुत्रवधु–उनके बच्चे ये 5–7 सदस्य हैं तब भी कंट्रोल नहीं कर पा रहा, बेटे की चाह अलग, पत्नी की चाह अलग, स्वयं का मन कुछ और करने को कह रहा है। विचार करो लगभग 140 करोड़ भारत की जनता को जो नियंत्रित कर रहा हो, जो हित की शिक्षा दे रहा हो उसका क्या? यदि आपके घर में कोई व्यक्ति बीमार या परेशान होता

है तो आपका ऑफिस में, घर में मन नहीं लगता, किसी कार्य में मन नहीं लगता तो फिर जिसने पूरी जनता को अपना परिवार मान लिया हो, उसके देश की जनता रोगी है, दुःखी है, व्याकुल है तो उसके दुःख की भी कल्पना करो। भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य है कि देश के शासक के निर्देशों का पालन करे क्योंकि बिना निर्देशों का पालन किये प्रजा कर्त्तव्यों से विहीन हुई मानी जायेगी।[1]

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

[1]कोरोना महामारी के समय आचार्य गुरुदेव का देश के नागरिकों को संकेत।

प्रजातंत्र

महानुभाव! भारत देश पुरावैदिक काल से एक आध्यात्मिक, धार्मिक, समीचीन संस्कृति का संवाहक–संचालक व निर्माता रहा है। विश्व की दृष्टि में भारत का स्थान गुरु की तरह से प्रशंसनीय और आदरणीय रहा है। किसी ने भौतिक समृद्धि के कारण इसे सोने की चिड़िया कहा तो किसी ने आध्यात्मिक विद्या के कारण परमात्मा के बीज का सिंचक और उस वृक्ष का पोषक कहा। भारत देश के संबंध में अनेक सम्प्रदाय और आम्नाय के मानने वाले महानुभावों ने प्रशंसनीय शब्द और वाक्य लिखे। यहाँ तक कि भारत देश को नमस्कार भी किया। जो विशेषता भारत देश में है वह विशेषता अन्य देशों में उपलब्ध न हो सकी। भारत देश के बारे में लिखा–

भारदं सुद्धु देसोत्थि, अज्झप्पणाणदायगा।
भारदस्स णमो जत्थ ठायीअ मयि पुव्वजा।।

'अज्जसक्किदी' (आर्य संस्कृति) नामक ग्रन्थ में लिखा है भारत एक श्रेष्ठ देश है। इसकी अनेक विशेषताओं में से एक विशेषता का कथन करते हुये कहते हैं कि यह आध्यात्मिक ज्ञान को देने वाला है। जैसे पुष्पवाटिका की अनेक विशेषता होते हुये भी एक बात कहते हैं कि सुगंधि देने वाली है, नदी की अनेक विशेषताओं को देखकर भी कहते हैं कि उसमें शीतल जल प्रवाहमान है, स्वर्ण की अनेक विशेषताओं के होते हुए भी कहते हैं कि स्वर्ण पीत वर्ण का होता है। कमल पुष्प की विशेषता कही कि वह कोमल है। सभी वस्तुओं में अनेक विशेषतायें होती हैं फिर कोई एक ऐसी विशेषता जो अन्य वस्तुओं में संभव न हो तो वह वास्तव में ही सबके लिये प्रशंसनीय और ग्राह्य होती है।

भारत देश की विशेषता है कि यह अनादिकाल से अन्य समीपस्थ और दूरस्थ देशवासियों के लिये आध्यात्मिक ज्ञान देने वाला रहा। वैदिक परम्परा के अनुसार नारायण श्री कृष्ण ने अर्जुन के निमित्त से आध्यात्मिक उपदेश दिया जो गीता नामक एक धर्मग्रन्थ में निबद्ध है, व्यास जी के द्वारा लिपिबद्ध भागवत् पुराण में, अन्य–अन्य कवियों के द्वारा रचित स्मृति और पुराणों में आध्यात्मिक उपदेश निबद्ध है। उधर हमारे तीर्थंकरों ने इस आध्यात्मिक विद्या को अपनी आत्मा में उत्पन्न करके और उसे जीवन में धारण करके सर्वज्ञता को प्राप्त किया और उन सर्वज्ञदेव तीर्थंकर रूपी हिमगिरी से जो आध्यात्मिक झरना फूट पड़ा वह आज तक सूखा नहीं और सूखेगा भी नहीं। ऐसा वह भारत देश जिस देश में अनेकों तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव, नारायण, बलभद्रादि पुण्य पुरुषों ने जन्म लिया। उन्होंने जिस देश में स्वयं शासन किया और शासन करते हुये वे स्वयं अपना हित करना नहीं भूले और दूसरों के हित के लिये प्रेरक निमित्त बने। इसीलिए ऐसे भारत देश के लिये आचार्य महोदय कह रहे हैं **'भारदस्स णमो जत्थ'**। उस भारत को नमस्कार करता हूँ जहाँ मेरे पूर्वज स्थित रहे, जिन्होंने विश्व को आत्महित का रास्ता दिया।

वर्तमान काल में भारत देश में प्रजातंत्र है। इसके पूर्व अनेक सदियों तक यहाँ राजतंत्र रहा, बादशाहियत रही जिसमें एक व्यक्ति का निर्णय सर्वोपरि और सर्वमान्य माना जाता था। उसके आदेश का पालन करना ही प्रजा का धर्म माना जाता था। प्रजा अपनी भावनाओं को व्यक्त करे, शासन माने या न माने यह जरूरी नहीं था। राजतंत्र में यही दोष था कि राजा अपनी प्रवृत्ति प्रजा के अनुकूल भी कर सकता है और प्रतिकूल भी कर सकता है। अनेक अत्याचारी, आक्रामक, दुष्ट शासक हुये जिन्होंने प्रजा के साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया जो दुर्व्यवहार कोई पशुओं के साथ

भी नहीं करे, सज्जन पुरुष कभी किसी दुष्ट के साथ भी न करें किन्तु प्रजा ने राजतंत्र में उन सबको सहन किया। आज अत्यंत सुखदवार्ता ये है कि भारत देश में प्रजातंत्र है। यह प्रजातंत्र आज पहली बार आया ऐसा नहीं, प्रजातंत्र हजारों वर्ष पूर्व भी था, तब भी राजा के चयन की पद्धति यही थी।

वैशाली जन का प्रतिपालक गण का आदि विधाता।
जिसे ढूंढता आज विश्व उस प्रजातंत्र की माता।।

रुको एक क्षण पथिक यहाँ मिट्टी को शीश नवाओ।
वीर सिद्धियों की समाधि पर फूल चढ़ाते जाओ।।

प्रजातंत्र महाराज चेटक के समय भी था। यहीं से उत्पन्न हुई यह जनतंत्र प्रणाली। भगवान् महावीर स्वामी के नाना जिन्होंने 14 वज्जीगढ को संग्रहीत करके प्रजातंत्र की स्थापना सबके हित के लिये की और पूरे भारतवर्ष का संचालन किया। उसके बाद अजातशत्रु/कुणिक जो महाराज बिम्बसार/श्रेणिक के पुत्र थे उन्होंने पूरे भारतवर्ष को एकता के सूत्र में बाँधा। कलिंग अधिपति सम्राट खारवेल, चन्द्रगुप्तमौर्य आदि सम्राटों ने भी प्रजातंत्र का सहारा लेकर के प्रजा के सुख की भावना भायी। जो प्रजा को अनावश्यक रूप से कष्ट दे रहे थे, अपनी भोग इच्छाओं के लिये विलासी जीवन जी रहे थे, प्रजा का सुख–दुःख उनकी दृष्टि में कुछ भी नहीं था ऐसे दुष्ट शासकों से प्रजा की रक्षा के लिये प्रजातंत्र की आवश्यकता पड़ी। प्रजातंत्र का आशय होता है प्रजा का तंत्र अर्थात् प्रजा का अनुशासन। प्रजा के द्वारा बनाये गये नियम–कानून–संविधान जिसके तहत प्रजा पर शासन किया जाये। जहाँ राजा का आदेश सर्वोपरि नहीं है सर्वसम्मति से संविधान बनाया जाता है, बहुमत के आधार से शासक का चयन किया

जाता है वह प्रजातंत्र है। इसे प्रजातंत्र कहो, जनतंत्र कहो, जनता का जनता के द्वारा या विशेष व्यक्ति द्वारा जनता पर अनुशासन कहो, यह डेमोक्रेसी निःसंदेह किसी भी देश के लिये वरदान स्वरूप है।

"Democracy is the Government of the people by the people for the people". प्रजातंत्र प्रजा के द्वारा बनायी गई एक ऐसी सरकार है जो प्रजा के हित के लिये कार्य करे, प्रजा में से ही व्यक्तियों का चयन करे और वह प्रजा ही एक दूसरे को अपने कर्त्तव्यों का बोध कराये। जिस व्यक्ति में जिस प्रकार की क्षमता है वह अपनी क्षमता का उपयोग स्व–पर हित में कर सके। जिसमें कृषि करने की क्षमता है वह कृषि करे यदि उसे अन्य दूसरों के सहयोग की आवश्कयता है तो वे सहयोग करें। जो वैद्य है, हकीम है, चिकित्सक है वह अपनी क्षमता का उपयोग दूसरों के आरोग्य के लिये करे, जो सेवा करने में समर्थ है वह सेवा करने में उपयोग करे, जो व्यवसाय करने में समर्थ है वह व्यवसाय में उपयोग करे, सबका उद्देश्य एक ही हो कि स्व–पर का हित हो, स्व–पर का कल्याण हो।

प्रजा का तंत्र निःसंदेह सुखद होता है। प्रजा को किस समय किस चीज की आवश्यकता है इसका अनुभव प्रजा कर सकती है। संभव है महलों में रहने वाला व्यक्ति प्रजा की भावनाओं को, प्रजा की आवश्यकताओं को न समझ पाये किन्तु प्रजा समझ सकती है कि हमारी भावनाओं को, हमारी आवश्यकताओं को कौन पूर्ण कर सकता है उस व्यक्ति का वह चयन करती है और चयन करके वह राजा बनाती है। हम आपकी आज्ञा मानेंगे, हम आपके निर्देशों का पालन करेंगे क्योंकि हम जानते हैं, हमारा आप पर विश्वास है आपका जीवन हमारे लिये है, हमारे नगर

की, ग्राम की, जनपद की, प्रान्त की, हमारे देश की रक्षा के लिये आपने सारा जीवन समर्पित किया है, हम आप पर विश्वास करते हैं और शासक भी सेवक बनकर देश की सेवा करते हैं। जैसे माँ वात्सल्य से अपनी संतान की गंदगी को दूर करती है उसी प्रकार वह शासक वात्सल्यपूर्वक उन्हें समझाकर उनके दोषों को दूर करता है। आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव ने एक 'अशोक अवदान' नामक ग्रंथ के विषय में बताया। उसमें उल्लेख है कि चक्रवर्ती अशोक के समय पंजाब में तीन बार विद्रोह हुआ। उनके पिता बिंदुसार ने कहा कि तुम वहाँ जाओ और स्थिति पर नियंत्रण करो। पिता की आज्ञानुसार अशोक सेना सहित पहुँचे। अशोक यह देखकर आश्चर्यचकित था कि वहाँ कि प्रजा उसके विरोध की बजाय उसका भारी स्वागत कर रही थी। उसने प्रजा से पूछा क्या दंड से भयभीत हो जो मेरे आने पर विद्रोह के स्थान पर स्वागत कर रहे हो? तब प्रजा ने कहा "हम आपका विरोध नहीं करते, हमें आपकी शासन प्रणाली से कोई परेशानी नहीं किन्तु यहाँ पर ऑफिसर हमें तंग करते हैं, हर काम के लिए रिश्वत माँगते हैं। लोगों कि बात सुनकर अशोक ने सभी को बुलाया और उन्हें प्रजातंत्र का अर्थ समझाते हुए कहा कि शासक के लिए प्रजा उसकी संतान के समान होती है, अतः अपने व्यवहार में सुधार करो, अनावश्यक रूप से उन्हे परेशान मत करो। तब किसी के पदों में परिवर्तन किया गया व किसी को पदच्युत कर वहाँ पर स्थिति सामान्य की। शासक व प्रजा दोनों के लिए प्रजातंत्र के महत्व को समझना आवश्यक है। जनता का उस शासक पर विश्वास और उस शासक का जनता पर विश्वास होता है। जैसे घर के मुखिया का घर के सदस्यों पर विश्वास और सदस्यों का अपने मुखिया पर विश्वास घर की उन्नति के लिये, घर की सुख और शान्ति के लिये आवश्यक होता है उसके बिना घर में

सुख शान्ति रह नहीं सकती। विश्वास बहुत बड़ी चीज है। इस प्रजातंत्र में सभी सुरक्षित व स्वतंत्र हैं किन्तु स्वच्छन्द नहीं।

'दा इंडिका' पुस्तक जो युनानी भाषा में लिखित है उसमें लेखक ने लिखा है कि हम उस (भारत) देश में घोड़े पर बैठकर घूमे और हमने देखा कि उस देश के मकानों में ताले नहीं लगते थें। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के समय घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। वैल्जियम में आज भी ऐसी दुकानें हैं जहाँ पर दुकानदार बैठता नहीं Rate लिखा हुआ है, वस्तु रखी है जितनी वस्तु चाहिये ले जाओ और अपना पैसा (उतना मूल्य) उसमें डाल दीजिये। आज भी कई एक दाम की दुकानें हैं चाहे ग्राहक नया हो पहली बार आया हो या कई बार आ चुका हो कहीं कोई ठगने की बात नहीं। आज भी कई जगह ऐसा है व्यक्ति को अपने नसीब पर, अपने पुरुषार्थ पर विश्वास है इसलिये धोखाधड़ी करने का भाव उसके मन में नहीं आता। कभी कदाचित् वह एक घण्टा कम काम करता है 8 घंटे की बजाय 7 घंटे काम करता है तो अपने मालिक से कहता है मेरे इस पारिश्रमिक में से कुछ कम कर दिया जाये आज मैंने काम कम किया है। जब मैं एक घंटा काम ज्यादा करता हूँ तब मैं आपसे कहता हूँ मुझे एक घण्टे की अलग से अधिक मजदूरी चाहिये तो जब एक घंटा कम काम किया है तो कम मजदूरी दीजिये। क्योंकि यदि मैं आज एक घंटे की मजदूरी ज्यादा ले लूँगा तो वह मजदूरी मेरे लिये सफल न होगी। आज परिश्रम से ज्यादा पारिश्रमिक प्राप्त करके मैं चोर बनना नहीं चाहता, अपनी आत्मा को बेईमान बनाना नहीं चाहता, मैं ईमानदारी से काम करना चाहता हूँ।

महानुभाव! आज ये अवस्था होना चाहिये। किन्तु आज घर में 3–4 सदस्य हैं तो चारों के कमरे अलग–अलग हैं, कमरों

में ताले लगे हैं, यदि अंदर अलमारी है तो अलमारी में ताला लगा, बैग रखा है तो बैग में ताला लगा यदि कोई डायरी है तो डायरी में ताला लगा हैं। आश्चर्य है तुम कितने ताले लगाओगे, कहाँ–कहाँ ताले लगाओगे। तुम्हें अपने ऊपर भी विश्वास नहीं, अपने परिवार पर विश्वास नहीं आखिर आप कहाँ जा रहे हो और कहाँ जाना चाहिये।

कभी समय वह था जब घरों में ताले नहीं डाले जाते थे, सभी एक साथ रहते थे, पूरे गाँव, नगर, मौहल्ले में एक साथ रह रहे हैं तो भी घर के किवाड़ नहीं लगाये जाते थे। एक समय वह था जब लोग चौपाल पर खुले में सो रहे हैं, घर के द्वार खुले हैं कोई बात नहीं, किसी के मन में चोरी का भाव नहीं आता। कभी किसी को कोई रोग हो, दुःख हो तो सभी मौहल्ले वाले एक साथ मिलने जाते और उसके दुःख दर्द को दूर करने की कोशिश करते। पहले समय वह था जब एक अनजान पथिक भी गाँव से निकलकर जा रहा हो तो गाँव वाले उससे पूछताछ करते, उसकी परेशानी को दूर करते। अपरिचित व्यक्ति भी यदि रास्ते में मिल जाये तो दूसरे के दुःख को दूर करने के लिये अपने कार्य को स्थगित कर देता, कहता मैं बाद में चला जाऊँगा, इस मरते हुये व्यक्ति को मैं छोड़ नहीं सकता, इस डूबते व्यक्ति को बीच मँझधार में छोड़ नहीं सकता, इसे बचाना मेरा धर्म है, मेरी गाड़ी छूटती है तो छूट जाने दो और अपनी जान हथेली पर रखकर दूसरों की जान बचाने को तैयार रहते।

प्रजातंत्र का आशय आज भी हमें यही समझना है कि हम सबको मिलकर के राष्ट्र की वृद्धि करना है। यदि प्रजातंत्र, गणतंत्रं को सफल बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम इसको समझना आवश्यक है। Homage to Vaishali जो कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

जी द्वारा लिखित है उसके अध्ययन से ज्ञात होगा कि भारत देश के संबंध दुनिया के अन्य देशों से बहुत श्रेष्ठ थे। प्रजातंत्र संबंधों में मधुरता सिखलाता है। तभी तो Homage to Vaishali की प्रस्तावना में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि ''यदि भगवान् महावीर के जन्म स्थान वैशाली के कानून को देश में लागू किया जाता तो देश की तस्वीर ही बदल जाती।

मैं देश की उन्नति करूँगा, मैं देश की सेवा करूँगा ये 'मैं' शब्द को एक किनारे रख देना चाहिये और 'हम' शब्द का प्रयोग करना चाहिये। हम देश के लिये अच्छा करेंगे, हम देश की उन्नति में कार्य करेंगे, हम देश के लिये समर्पित रहेंगे इत्यादि। देशोन्नति के लिए परस्पर में वात्सल्य भाव आवश्यक है। दंडादि व्यक्ति के हृदय को कितना परिवर्तन कर पाए, यह तो मैं नहीं कह सकता किन्तु वात्सल्य से हृदय परिवर्तन अवश्य किया जा सकता है। अतः पारस्परिक प्रेम, समन्वयता, सौहार्दता, सामंजस्यता सदैव बनाए रखें। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के प्रति समर्पित रहे। 140 करोड़ में से यह नहीं सोचना कि मैं अकेला एक हूँ। बूंद जब एक हो जायेगी तब सूर्य की कोई भी किरण उसे सुखा देगी और बूँद जब मिलकर समुद्र बन जायेगी तो समुद्र को कोई भी सूर्य सुखा नहीं सकता। ऐसे ही हम और आप मिलकर इस भारतवर्ष में लगभग 140 करोड़ लोग हैं तो कोई भी प्रतिकूलता हमारे देश को हिला नहीं सकती और यदि हम आपस में बिखर गये तो हम दूसरों की तो क्या स्वयं की रक्षा करने में भी समर्थ न हो सकेंगे।

आज आवश्यकता है एक साथ मिलकर एक जुट होने की। जैसे किसी खेत की रक्षा करने के लिये बाड़ होती है, वे वृक्ष आपस में जुड़े होते हैं कोई पशु उस खेत के अंदर आ नहीं पाता। काँटे वाले पेड़ दूसरों के लिये काँटों का कार्य करते हैं

किन्तु वही काँटे खेत की रक्षा का काम करते हैं। एकेन्द्रिय वृक्ष भी अपनी सेवा देता है, अपने पुष्प देता है, अपने फल देता है, छाया देता है, पत्र देता है, लकड़ी देता है। उसे कोई लोभ नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, कोई बदले की भावना नहीं। ऐसे ही हम सभी को भी एक दूसरे के प्रति हित की भावना रखनी चाहिये। प्रत्येक भारतीय नागरिक इस प्रजातंत्र में सहयोगी बने।

जैसे प्रजातंत्र में पूरे देश में सुरक्षा के लिये सुरक्षाकर्मी, सेवा के लिये सेवाकर्मी अन्य–अन्य सेवाओं के लिये लोग नियुक्त किये गये हैं सभी को निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये। हम और आप भी बिना किसी शिकायत किये, बिना किसी दूसरों के दोष देखे हुये अपने कर्त्तव्य का पालन निष्ठा से करें, ईमानदारी से करें। जब हम ईमानदार हो जायेंगे तब पूरा देश व राष्ट्र ईमानदार बन जायेगा। और यदि हम चाहें कि मैं बेईमानी करता रहूँ और पूरा देश ईमानदार हो तो यह संभव नहीं है।

प्रजातंत्र में प्रत्येक इकाई का महत्व बराबर होता है और प्रत्येक इकाई का महत्वपूर्ण स्थान होता है। एक इकाई भी खण्डित होती है, अशुद्ध होती है, अपने पद से च्युत होती है तो उसका प्रभाव उस पूरी चेन पर पड़ता है। चेन कितनी भी लंबी हो यदि उसमें से एक कड़ा छूट जाता है तो पूरी चेन बिखर सकती है इसलिये आप और हम सब प्रजातंत्र के साथ जीना सीखें, कर्त्तव्य का निष्ठा के साथ पालन करना सीखें। आज बस इतना ही।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

भगवान् महावीर स्वामी

महानुभाव! भारत देश महापुरुषों की छत्रछाया में पल्लवित, पुष्पित और फलित देश है। भारत देश पर जब–जब भी संकट की घड़ी आयी महापुरुषों की छत्रछाया उनके सिद्धान्तों की सुखद छाया और उनकी वाणी का दिव्यवरदान संजीवनी की तरह भारतीय जनता जनार्दन के लिये सदैव उपस्थित रहा। महापुरुषों के सिद्धान्त व वाणी माँ की ममता की तरह से आत्महितैषी और जीवन को सुख–शांति से भरने वाले होते हैं। इस देश में अनेक महापुरुष हुये, हर महापुरुष की अपनी कोई न कोई अलग विशेषता रही। प्रत्येक महापुरुष ने समय–समय पर सुखद संदेश दिये और अपनी जीवन चर्या के माध्यम से तत्कालवर्ती जीवों को जीने की कला सिखाई।

ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी तक जिनशासन के चौबीस तीर्थंकर हुए। वे सभी धर्म के ऐसे मसीहा रहे, ऐसे यज्ञदूत रहे, ऐसे मुक्तिदूत रहे जिन्होंने आध्यात्मिक क्षितिज में उड़ान भरने से पहले प्राणियों को व्यवहार जीवन की भूमि पर चलना सिखाया और वे महापुरुष केवल एक व्यक्ति स्वरूप न थे, वे महापुरुष उस समय की समूची मानवता के सन्मार्गदर्शक थे, वे प्राणी मात्र के लिये वरदान स्वरूप थे। वे महापुरुष केवल अपना जीवन जीने के लिये नहीं आये उन्होंने अनेक जीवनों को जीवंतता प्रदान की। चाहे भगवान् राम हों या भगवान् ऋषभदेव, चाहे भगवान् महावीर हो या भगवान् शांतिनाथ, चाहे और भी अनेक भगवान् कामदेव श्री शैल (हनुमान) इन सभी महापुरुषों के जन्मदिवस लगभग निकटवर्ती समय में हैं। भगवान् महावीर स्वामी की जन्म जयंती, रामचन्द्र जी की जन्म जयंती आगे भगवान् हनुमान की जयंती ये सब जयंती मनाने का उपक्रम इसी बात का प्रतीक है कि आज

भी हमें उन महान् पुरुषों की जीवन शैली पर विश्वास है। हमें आज तक उनके सिद्धान्तों पर विश्वास है, हमें आज भी विश्वास है कि उनके सिद्धान्तों को जीवन में धारण करके सुख–शांति की प्राप्ति हो सकेगी। दीपक को बुझा करके कोई प्रकाश नहीं कर पाता। दीपक जलाने की विधि और प्रक्रिया हमें ज्ञात है तो दीपक कभी भी जलाया जा सकता है। यदि पूर्व दिशा से आशा है, विश्वास है तो सूर्योदय होगा, हाँ यह अवश्य है वह मध्यरात्रि में संभव नहीं है, समय की भी इंतजारी करनी होती है। समय जब उचित होता है तब सूर्य का उदय होता है और जब सूर्य का उदय होता है वही समय प्रातःकाल कहलाता है। लोग कहते हैं प्रातःकाल में सूर्य का उदय होता है किन्तु ऐसे भी कहा जाता है कि सूर्य का उदय होते ही प्रातःकाल हो जाता है।

महानुभाव! जब–जब महापुरुषों का चरित्र हमारे जीवन में उतरने लगता है तब–तब सूर्य का उदय वसुधा पर होने लगता है। महापुरुष वहाँ से कोई दिव्य चीज नहीं लाते वरन् वे स्वयं अपने जीवन को इस तरह से जीना प्रारंभ करते हैं जिस प्रकार के जीवन की वर्तमान काल को आवश्यकता होती है। कभी आध्यात्मिकता का सरोवर सूख जाता है तो महापुरुष रूपी मेघ उस आध्यात्मिकता के सरोवर को पुनः भर देते हैं। कभी भौतिकता की वृद्धि–संवृद्धि के लिये कोई ऐसे पुरुष भी जन्म लेते हैं जो भौतिक समृद्धि देने वाले होते हैं, तो कभी देश को आवश्यकता पड़ती है नये आविष्कार की तो वैज्ञानिक आता है वह नयी खोज करके उस काल में उस आवश्यकता की पूर्ति करता है।

किसी एक व्यक्ति को पकड़कर यह नहीं कह सकते कि ये अपने आप में समग्र व सम्पूर्ण है। एक समय में एक व्यक्ति एक पहलू से समग्र है दूसरे पहलू से अपूर्ण भी हो सकता है।

वह व्यक्ति अनेक समय की दृष्टि से देखा जाये तो पूर्ण भी हो सकता है। जिस समय महापुरुषों ने जन्म लिया वह राज परिवार था, भौतिक वैभव पर्याप्त से ज्यादा था किन्तु उन्होंने उस वैभव में रहकर जान लिया कि यह वैभव जीवन को सफल और सार्थक नहीं कर सकता, इससे भी परे कुछ और है। वैभव को पास में रखकर उसकी अनुभूति नहीं की जा सकती। जैसे पैर में काँटा चुभा हो तो पैर में काँटे से रहित अवस्था की अनुभूति नहीं की जा सकती, मुख में नमक की डली रखकर नमक की डली रहित मुख का स्वाद कैसा होता है इसकी अनुभूति नहीं की जा सकती, वैसे ही उस प्रकार का जीवन जीये बिना उनको समझना बड़ा कठिन होता है। केवल पुस्तकें, साहित्य पढ़ने से हम महापुरुष के समीप नहीं पहुँच सकते। महापुरुषों जैसी सोच बना लेने से हमारे अंदर महापुरुषों के सूत्र स्वतः ही जीवंत होने लगते हैं, उनकी अनुभूतियाँ चिरजीवी होती हैं, वह अनुभूतियाँ पुष्पित और फलित होने लगती हैं।

भगवान् महावीरस्वामी जिनशासन के 24वें तीर्थंकर माने जाते हैं, भगवान् ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर माने जाते हैं, दोनों का जन्म संयोगवशात् चैत्र में हुआ था। प्रथम तीर्थंकर का जन्म चैत्रमास की नवमी के दिन व अंतिम तीर्थंकर का जन्म चैत्रमास की शुक्लपक्ष की त्रयोदशी के दिन हुआ। इस युग के मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जो हिन्दु सम्प्रदाय के लिये, जैन सम्प्रदाय के लिये, बौद्ध सम्प्रदाय के लिये एवं अन्य–अन्य सम्प्रदायों के लिये भी एक आदर्श रूप में माने जाते हैं, जो आज सबके दिल और दिमाग में धर्म मूर्ति के रूप में माने जाते हैं उनका जन्म भी चैत्र माह में हुआ। माना तो यह भी जाता है कि उनके परम भक्त, कामदेव अत्यंत सौन्दर्यवान्, शक्ति के संवाहक, मर्यादा की रक्षा करने वाले हनुमान जी का जन्म भी चैत्रमास की पूर्णमासी के दिन ही हुआ।

महानुभाव! वर्तमाल काल में हमें इन सब महापुरुषों का स्मरण करना है। इन सभी का स्मरण हमें शक्ति देने वाला है, इन सभी का स्मरण हमारे अंदर नव ऊर्जा का संचार करने वाला है, हमारे आत्मप्रदेशों में उत्साह भरने वाला है। व्यक्ति की मनःस्थिति जैसी होती है व्यक्ति की स्थिति वैसी बन जाती है। व्यक्ति के जैसे विचार होते हैं वैसा उसका आचार हो जाता है, वैसा ही वह व्यवहार करने लग जाता है इसीलिये हमें अपनी मनःस्थिति सुधारना है परिस्थिति अपने आप सुधरती चली जायेगी। हमें अपने विचारों को बदलना है हमारा आचार व्यवहार अपने आप बदलता चला जायेगा।

वर्धमान वास्तव में ही वर्धमान थे, शक्तिमान् थे, ज्ञानवान् थे, गुणवान् थे, महावीर थे, उनके सिद्धान्त आज उतने ही आवश्यक हैं जितना आवश्यक है जीने के लिये श्वांस लेना। अगर प्राणवायु का प्रयोग नहीं किया जाये तो व्यक्ति जीवित नहीं रह पायेगा, मर जायेगा, मुर्दा हो जायेगा। ऐसे ही वर्धमान महावीर स्वामी के सिद्ध ान्तों को जीवन में प्रयोग नहीं किया तो निःसंदेह हमारा जीवन तबाह हो जायेगा। किसी ने कहा है जीवन में या तो महावीर या महाविनाश। जहाँ महावीर है वहाँ महाविनाश नहीं हो सकता, जहाँ महावीर नहीं है वहाँ महाविनाश से कोई रोक नहीं सकता। नदी में बहते हुये पानी को बांध बनाकर रोका जा सकता है ऐसे ही गिरती हुयी मानवता को रोकने के लिये महापुरुष का जीवन चरित्र एक बांध की तरह से है जो पतन को रोक सकता है।

भगवान् महावीर स्वामी इस युग के लिये आवश्यक नहीं हैं यह शब्द कभी नहीं कहना, भगवान् महावीर स्वामी हर युग के लिये उतने ही आवश्यक हैं जितनी आवश्यक है जीने के लिये प्राणवायु, जितना आवश्यक है भोजन, जितना आवश्यक है जल, जितनी अंधकार को भगाने के लिये प्रकाश की आवश्यकता है

उतनी ही आवश्यकता है भगवान् महावीर स्वामी को अपने जीवन में उतारने की। भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों के संबंध में आज से 1900 वर्ष पूर्व आचार्य भगवन् समंतभद्र स्वामी जी ने लिखा–

सर्वान्तवत्तद् गुणमुख्यकल्पं, सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षं।
सर्वापदामन्तकरं निरंतं, सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव।।–युक्त्यानुशासन

हे भगवान् महावीर स्वामी! आपका ही यह ऐसा तीर्थ है जो सर्वोदयी है, जो प्राणीमात्र का हित करने में समर्थ है। आपके सिद्धान्त में गौणता–मुख्यता की बात है। एक बात कही जा रही है तो दूसरी बात का अभाव नहीं है उसका सद्भाव है किन्तु उस समय गौण कर दिया। जिस समय व्यक्ति पहाडा पढ़ रहा है उसमें 2–4–6, 8–10–12–14–16–18–20 आते हैं। जब वह दो एकम् दो कह रहा है तब ऐसा नहीं 4,6,8,10 आदि नहीं हों किन्तु एक बार में एक ही ऑकड़ा, एक ही संख्या कही जा सकती है सबको एक साथ नहीं कहा जा सकता है। कभी मुख्यता कभी गौणता। इससे भी सिद्धान्त का ज्ञान होता है। जिसमें सामान्य विशेष, द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिक, अस्ति नास्ति रूप सभी धर्म गौण व मुख्य रूप से रहते हैं, ये सभी धर्म–धर्मी में परस्पर सापेक्ष हैं अन्यथा द्रव्य में कोई धर्म या गुण नहीं रह पाएगा। 'सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षं' जो अपेक्षा से रहित कथन होता है वह मिथ्याकथन होता है। वह मिथ्याकथन कभी सम्यक् लक्ष्य को प्राप्त नहीं कराता।

जो सम्यक् कथन है वह मिथ्यात्व में भटकाता नहीं है। पाइप के माध्यम से आने वाला पानी पाइप के बाहर नहीं निकल सकता। और पाइप के बाहर से ऊपर फेंका गया पानी ऊपर मंजिल तक नहीं पहुँच सकता। तीर को छोड़ने वाला धनुर्धारी जब निशाना लगाकर छोड़ता है तो तीर वहीं लगता है और यद्वा तद्वा छोड़ने से तीर वहाँ नहीं लगता है। ऐसे ही वाक्य जब

प्रमाणिक होते हैं तब अपने कार्य की सिद्धि करने में समर्थ होते हैं जब वही वाक्य अप्रमाणिक होते हैं तो वे मानवता का हित नहीं अहित करने वाले होते हैं। 'सर्वापदा मन्त्रकरं निरंतं' हे भगवान् महावीर स्वामी! आपका यह सर्वोदयी धर्म सम्पूर्ण आपत्तियों को नष्ट करने वाला है और यह आपका शाश्वत सिद्ध सिद्धान्त कभी भी किसी के द्वारा खण्डित नहीं किया जा सकता। जैसे आकाश को कोई नष्ट नहीं कर सकता, जैसे सूर्य–चन्द्रमा को कोई नष्ट नहीं कर सकता पृथ्वी को कोई नष्ट नहीं कर सकता, जैसे जल–अग्नि–वायु को कोई नष्ट नहीं कर सकता ऐसे ही शाश्वत सिद्धान्तों को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

महानुभाव! आज ऑक्सीजन उतनी ही आवश्यक है जितनी आज से हजारों–लाखों करोड़ों–असंख्यातों वर्ष पूर्व थी। आज जितनी ऑक्सीजन की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों को स्वीकार करने की है। उनके बिना जीवन जीना मुश्किल ही नहीं असंभव सा प्रतीत होता है। भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्त सार्वभौमिक है, सार्वकालिक हैं, प्राणीमात्र के लिये हैं। जिस तरह से ऑक्सीजन भेदभाव नहीं करती, किसी भी मनुष्य के लिये प्राणदायिनी होती है, जैसे गाय का घृत कोई भेदभाव नहीं करता सभी के लिये लाभदायक है, जाति–पाति का भेद नहीं करता, जैसे तुलसी का पत्ता सभी के लिये औषधि रूप है, सूर्य–चाँद का प्रकाश सभी के लिये है, गंगा का जल सभी के लिये आनंददायी होता है इनमें कभी भी व्यक्ति भेदभाव नहीं करता। निःसंदेह दीपक जलाते समय दीपक से पूछा नहीं जाता कि तू हिन्दू का है, मुस्लिम का है, इसाई का है या जैन का है। दीपक दीपक होता है उसका कार्य प्रकाश देना होता है, पानी पीते समय पानी यह नहीं पूछता कि ये व्यक्ति कौन सी जाति का है, मिष्ठान्न खाते समय यह नहीं पूछते यह किस

देश–जाति का है बस मिठास देना उसका काम है। पुष्प का काम गंध देना है। कोई भी औषधि स्वस्थ करने से पूर्व यह नहीं पूछती कि वह रोगी हिंदू वंश में पैदा हुआ या मुस्लिम के वंश में पैदा हुआ था, जैन–इसाई–बौद्ध–पारसी आदि किसी भी वंश में पैदा हुआ, किसी भी पंथ–आम्नाय से उसका सरोकार नहीं उसका कार्य स्वस्थता प्रदान करना है। इसी प्रकार भगवान् महावीर के सिद्धान्त किसी समुदाय–सम्प्रदाय–आम्नाय–पंथ विशेष के लिये नहीं हैं प्राणी मात्र के लिये हैं।

सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी ने समस्त विश्व को विशाल दृष्टि प्रदान की । कूप मंडूक के समान अपना जीवन व्यतीत मत करो, उसके समान सीमित दृष्टि मत रखो, विशाल ज्ञान समुद्र में अवगाहन करो। भगवान् महावीर के सर्वोदय तीर्थ में सभी आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। भगवान् के धर्म तीर्थ में कोई भेदभाव नहीं है। सभी मानव, पशु–पक्षी आदि धर्म का पालन कर सकते हैं। सप्त व्यसनी चोर, चांडाल आदि ने भी भगवान् महावीर के सर्वोदयी धर्म का आश्रय ले मोक्ष व स्वर्गादि को प्राप्त किया और तो और सियार, श्वान, हाथी, सिंह, सर्प, मेंढक आदि ने भी धर्म का पालन कर स्वर्ग वा इन्द्रादि पदों को प्राप्त किया। जैसे सूर्य सभी के लिए प्रकाश आदि लिए हुए है उसी प्रकार भगवान् महावीर के सिद्धांत भी सबके कल्याण व अभ्युदय के लिए हैं।

आज आवश्यकता है भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों को जीवन में पुनः धारण करने की। वह सिद्धान्त है **'जियो और जीने दो'**। जब तक हम दूसरों को जीने के लिये सहयोगी नहीं बनेंगे, हमारा जीवन एकांगी रह जायेगा। तेज चलती हुयी हवा में उड़ते हुये धूल के कण आँखों में भरकर के दुःख दे सकते हैं, उड़ते हुये तिनके दुःख दे सकते हैं, उड़ते हुये पत्ते हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर सकते हैं किंतु उन्हें भी संग्रहीत करके उनका

सदुपयोग किया जा सकता है। एक व्यक्ति ने पत्तों को इकट्ठा करके चादर जैसी बनायी, और ऊपर तानकर धूप रोकने की कोशिश कर रहा था वह जैसे ही बिछाता वह हवा के झोंके से उड़ जाते अन्य सभी लोग भी अपनी–अपनी चद्दर बिछाने में लगे पर पे समर्थ नहीं हो पा रहे थे। तब उन्होंने आपस में कहा तुम मेरी चद्दर बिछाने में लगे पर वे समर्थ नहीं हो पा रहे थे। तब उन्होंने आपस में कहा तुम मेरी चद्दर बिछाने में सहयोगी बनो, मैं तुम्हारी चद्दर बिछाने में सहयोगी बनूँगा। उन्होंने सभी चद्दरों को आपस में मिलाया गाँठ लगायी और बहुत बड़ी चद्दर बन गयी, जिसे हवा उड़ा न सकी।

महानुभाव! झोपड़ी एक व्यक्ति नहीं बना सकता। झोपड़ी खड़ी करने के लिये चार जगह से उठाने के लिये चार व्यक्ति चाहिये तभी खड़ी हो पाती है। ऐसे ही अकेले–अकेले हम अपना जीवन जी नहीं सकते। हमें भी अपना जीवन जीने के लिये एक दूसरे की नियमतः आवश्यकता होती है। सर्वोदय की भावना विश्व के सब पदार्थों में है, कहीं से भी शिक्षा ली जा सकती है। प्रत्येक प्राणी एक–दूसरे के लिए उपकारी है। एक–दूसरे का उपकार करते हुए जीवन व्यतीत करना कुछ अर्थकारी है अन्यथा गाँव की बिना पढ़ी–लिखी महिलाएँ भी कहती हैं अरे! ऐसे व्यर्थ का जीवन व्यतीत करने से तो पेड़ ही बन जाता, फल न देता तो कम से कम दूसरों को छाया तो देता। पेड़ भी न बन सकता तो पत्थर बन जाता, जिससे चक्की बनकर दूसरों के आटा पीसने के तो काम आता। भगवान् महावीर का धर्म स्व–पर हित का संदेश देता है। इसलिए न तो भगवान् ने केवल ये कहा 'जीओ' और न मात्र ये कहा 'जीने दो'। उन्होंने कहा स्वयं भी अनुशासन व धर्म के साथ जीओ और दूसरों के सुखी जीवन में भी निमित्त बनो। क्योंकि किसी को दुःखी करके कोई स्वयं सुखी नहीं रह सकता।

पड़ोसी की झोपड़ी में आग लगाकर कोई सावन का आनंद नहीं ले सकता। वहीं तपन उसको भी जलाकर राख कर देगी। अतः सबके कल्याण की कामना करो।

भगवान् महावीर स्वामी का यह सिद्धान्त आपके जीवन में आये, आपका जीवन अहिंसा से युक्त हो तब आप तीनों लोक में निर्भय रह सकते हैं, आपके जीवन में अनेकान्तवाद हो तब आपकी वाणी प्रमाणिक हो सकती है, आपके जीवन में स्याद्वाद हो तब आपके जीवन में कोई विवाद नहीं रहेगा। आप अनेक विवादों को संवाद में बदलने में समर्थ हो सकेंगे। जीवन में अपरिग्रहवाद हो तो जीवन में ऊँच–नीच का भेद नहीं रहेगा, अपरिग्रह की रक्षा के लिये परिग्रह का त्याग आवश्यक है और परिग्रह का जब त्याग होगा तब अचौर्य–ब्रह्मचर्य भी संरक्षित रहेंगे एवं सत्य का भी पालन होगा।

आप सभी इन व्रतों के माध्यम से भगवान् महावीर स्वामी को अपने जीवन में जीवंत करें यही भगवान् महावीर स्वामी की जन्म जयंती मनाने का सही अर्थ होगा। हम सब उनके सिद्धांतों का चिंतन करें, अपने जीवन में चरितार्थ करें इन्हीं भावनाओं के साथ........।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'अहिंसा'

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी जिन्होंने विश्व को आत्मशांति का मार्ग दिखाया, जिन्होंने प्राणी मात्र को 'जियो और जीने दो' का उपदेश दिया। जो भगवान् महावीर स्वामी एक व्यक्ति विशेष न होकर समग्र मानव जाति के लिये आदर्श रूप थे। आकाश में चमकने वाला चन्द्रमा सबको चाँदनी और शीतलता देता है, आकाश में उदय हुआ सूर्य पूरी पृथ्वी तल पर अपना दिव्य प्रकाश फैलाता है। उस सूर्य के प्रकाश में पशु–पक्षी चहकने लगते हैं, पुष्प महकने लगते हैं, वृक्ष अपना भोजन बनाने लगते हैं, मानव जाति जीवंतता का अनुभव करती है उसी प्रकार वर्द्धमान महावीर स्वामी के सद्भाव में उस समय की मानवजाति उन्हें पाकर कृतार्थ हुयी। भगवान् महावीर स्वामी ने जो सिद्धान्त दिये वे उस समय भी आत्महित करने में समर्थ थे और आज भी। भगवान् महावीर स्वामी ने वही धर्म प्रस्तुत किया जो उनसे पूर्व अनंत तीर्थंकरों ने, सर्वज्ञ देव भगवंतों ने और अरिहन्तों ने प्रस्तुत किया था।

समस्तव्रतसमूहानामहिंसा जननी मता।
खानिर्विश्वगुणानां च धरा धर्मतरोः परा।।

अहिंसा समस्त व्रतों के समूह की माता है, समस्त गुणों की खानि है तथा धर्म रूपी वृक्ष की उत्तम भूमि है।

'अहिंसा' सम्पूर्ण धर्म का मूल है, अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। उस अहिंसा की रक्षा के लिये अन्य–अन्य धर्म अंग के रूप में सहायक माने जाते हैं। उन अंगों के बिना अहिंसा पूर्ण नहीं होती। 'अहिंसा' आत्मा का स्वभाव है, अहिंसा आत्मा का धर्म है, आत्मा की नियति है, प्रकृति है, गुण है। अहिंसा का पूर्णतया अभाव कभी भी किसी भी जीव में नहीं हो सकता। अहिंसा का सद्भाव

सदा और सर्वत्र संभव है। जिस प्रकार चेतना में ज्ञान–दर्शन हमेशा रहता है, जिस प्रकार अग्नि में ऊष्णता हमेशा रहती है, जिस प्रकार जल में शीतलता हमेशा रहती है वैसे ही प्राणीमात्र में अहिंसा का भाव सहजोत्पन्न भाव है। हिंसा विकृति है, विकार है, विभाव है, दोष है, पतन का मार्ग है। हिंसा हमारा स्वभाव नहीं है, इसलिये हिंसा में कोई भी प्राणी दीर्घकाल तक रह नहीं सकता। अहिंसा के साथ सुदीर्घकाल तक रह सकता है। जैसे जल का स्वभाव शीतलता है उसे अग्नि के प्रभाव से गर्म किया जा सकता है किन्तु फिर भी उसका स्वभाव शीतलता है। जब तक जल, जल है तब तक वह अपने स्वभाव को छोड़ नहीं सकता। किसी ने पूछा जो जल अग्नि के समीप में उबल रहा है, उसमें शीतलता कहाँ है? तो उस जल में भी शीतलता है, वही जल यदि उसी अग्नि पर गिरा दिया जाये तो अग्नि बुझ जाती है। यदि उसमें शीतलता नहीं होती तो वह अग्नि बुझाने में समर्थ नहीं होता।

महानुभाव! बाह्य द्रव्यों के माध्यम से हमारा अहिंसक भाव तिरोहित होता चला जा रहा है किन्तु पूर्णतः नष्ट नहीं हुआ। जैसे अग्नि के संयोग से दूध उबलने लगता है उबलना दूध का स्वभाव नहीं है, दूध तो बर्तन में रखा है ज्यों की त्यों रखा रहेगा किन्तु अग्नि का संयोग मिला तो दूध उबलने लगा ऐसे ही इस आत्मा को अन्य कषाय भाव का संयोग मिलता है, पौद्गलिक पदार्थों का संयोग मिलता है तो इस आत्मा में राग–द्वेष होने लगते हैं, हिंसा पनपती दिखाई देने लगती है किन्तु यह हिंसा अधिक समय तक टिकती नहीं। जैसे आकाश में श्याम मेघ अधिक समय तक ठहरते नहीं ऐसे ही किसी भी प्राणी के जीवन में हिंसा ठहरती नहीं। कुछ समय के लिये आवेश में आकर के वह कितना बड़ा भी अपराध करे किन्तु फिर भी उसके चित्त में अहिंसा की भावना है। जंगल में रहने वाले वे वन्य हिंसक सिंह आदि जानवर भी हिंसा करते हैं किन्तु वे जानवर भी हमेशा हिंसा नहीं करते अपनी

और अपने परिवार की रक्षा करते हैं। जिसको वह जानवर प्यार करता है उसको नहीं मारता है। चाहे वह भले ही भूखा क्यों न रहे। जंगल में ऐसे जानवर भी देखे जिनसे उनकी मित्रता थी उन्हें मारकर नहीं खाया भले ही अपना प्राण विसर्जित कर दिया।

अभयकुमार का जीव जब हाथी की पर्याय में था। एक बार जंगल में आग लगी हुयी थी, जंगल में आग लगने के कारण सभी जानवर एक स्थान पर बचने के लिये तालाब के समीप नम भूमि पर जाकर खड़े हो गये। जगह बहुत कम थी जितने भी जानवर थे सभी आपस में सटकर खड़े हो गये। एक खरगोश अचानक आया उसे जगह नहीं मिल पा रही थी वह सोच रहा था कहाँ जगह मिले। तभी अचानक हाथी ने अपना एक पैर उठाया और वह खरगोश उस उठे पैर के नीचे आकर बैठ गया। हाथी ने देखा नीचे खरगोश है अगर मैंने पैर रखा तो यह मर जायेगा इसलिये हाथी अपने पैर को उठाये खड़ा रहा। तीन दिन तक जंगल में अग्नि जलती रही, हाथी तीन दिन तक पैर को ऊँचा रखा रहा। जंगल की आग बुझी सब जानवर वहाँ से भागे तो हाथी भी चलने को उत्सुक हुआ किन्तु उसका पैर अकड़ गया वह वहीं गिर पड़ा। महानुभाव! अहिंसा की भावना उसके अंदर थी और शास्त्र बताते हैं वह हाथी का जीव मृत्यु को प्राप्त करके महाराज श्रेणिक का पुत्र अभयकुमार हुआ।

अहिंसा की भावना किसी भी प्राणी के मन में आ सकती है। अहिंसा हमारा मूल स्वभाव है। अहिंसा के बारे में कितने उदाहरण वैदिक ग्रंथों में, जैन ग्रंथों में, इस्लाम धर्मानुयायियों के ग्रंथों में, इसाई–पारसी आदि के ग्रंथों में हैं कि अहिंसा के लिये, जीव रक्षा के लिये दया के लिये, किन–किन लोगों ने अपना त्याग किया, स्वयं कष्ट सहन किया किन्तु सामने वाले को कष्ट देना मंजूर नहीं किया।

आपको ज्ञात होगा वैदिक परम्परा में राजा शिवी का उदाहरण, जैन दर्शन में भगवान् शांतिनाथ का पूर्व भव का उदाहरण। आपको ज्ञात है गौतमबुद्ध जब गृहस्थ अवस्था में राजकुमार थे तब हंस के बच्चे को उन्होंने किस तरह से बचाया। उनके चाचा के पुत्र ने जब तीर मारा तो बुद्ध ने तीर निकाला और उसे बचाया पुनः पिता शुद्धोधन से पूछा पिता जी इस पर किसका अधिकार है। मारने वाला कहता है इस पर मेरा अधिकार है, बचाने वाला कहता है इस पर मेरा अधिकार है। तभी निर्णय प्राप्त हुआ मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है, मारने वाले का अधिकार नहीं होता बचाने वाले का अधिकार होता है।

महानुभाव! आपको अमरचन्द दीवान की अहिंसा की आवाज ज्ञात है जिन्होंने उसी अहिंसा के बल पर उस शेर को कठघरे में जलेबी खिलाई थी। आपको ज्ञात है कुतुबुद्धीन ऐबक जो जंगल में शिकार करने गया और हरिणी को अपने मंत्री के कहने पर छोड़ दिया उसे अभयदान दे दिया। रात में उसे स्वप्न आता है जैसे उससे किसी ने कहा हो आज तुमने उस हरिणी पर दया की मैं तुझसे बहुत संतुष्ट हूँ, क्योंकि यही वास्तव में धर्म है। अहिंसा के कितने सारे उदाहरण है।

आपको ज्ञात होगा गाँधी जी के बारे में, वे अहिंसा के सिद्धान्तों पर चलने वाले भगवान् महावीर स्वामी की वाणी को अपनी रग–रग में समाहित करने वाले थे, उनको विश्वास था अहिंसा से ही हमारा देश स्वतंत्र हो सकता है। प्रारंभ में लोगों ने उनका मखौल भी उड़ाया किन्तु उन्होंने उस अहिंसा की आवाज से देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराया। अहिंसा में वह शक्ति है जो कभी भी किसी में नहीं हो सकती। अहिंसा के माध्यम से बड़े–बड़े कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं। जब गाँधी जी की मृत्यु हुयी तब अमेरिका में एक छोटी बेटी उस समाचार को रेडियो पर सुन रही थी। वह अपनी माँ से कहती है माँ

महात्मा गाँधी जी आज मृत्यु को प्राप्त हुये उन्हें किसी ने गोली से मार दिया, माँ! यह गोली बन्दूक किसने बनायी? यदि यह गोली बन्दूक नहीं बनी होती तो गाँधी जी की मृत्यु नहीं हुयी होती। उस छोटी कन्या के मन में ऐसा विचार कहाँ से आया? क्योंकि यह अहिंसा प्राणी का स्वभाव है इसीलिये उसके मन में ऐसा विचार आया।

महानुभाव! अमेरिका में एक व्यक्ति अपने घर का निर्माण कर रहा था। घर निर्माण कराते समय जब लगभग पूरा काम होने को था तब उसे ज्ञात हुआ कि नीचे की मंजिल में चिड़ियों के अंडे रखे हैं उन्होंने अपना घोंसला बना लिया है। अब क्या करें? उसने मजदूरों से कहा इन्हें निकालकर बाहर फेंक दो, और जल्दी से जल्दी मकान तैयार करो। मजदूरों ने कहा नहीं साहब! हम इन बच्चों को नहीं फेंक सकते हैं। ये बहुत छोटे हैं मर जायेंगे। किन्तु वह व्यक्ति नहीं माना। मजदूरों ने पुलिस को संकेत किया, पुलिस आयी और कहा नहीं इन बच्चों को अलग नहीं किया जा सकता। जब तक उन अण्डों में से बच्चे निकलकर बाहर नहीं आ गये तब तक पुलिस वहाँ पर रक्षा करती रही उस मकान में काम नही लगा।

एक व्यक्ति यात्रा करने जा रहा था, पीछे उसके मकान में चिड़ियों ने घोंसला बना लिया, उसमें अण्डे रखे थे, व्यक्ति को यात्रा पर जाना जरूरी था। वह सोचता है अगर मैं इन अण्डों को उठकार बाहर रखता हूँ तो ये बच्चे मर जायेंगे, अंदर रखे हैं और मैं बाहर से ताला लगाकर जाता हूँ तब भी वे घुट–घुटकर मर जायेंगे। क्या करूँ? घर को खुला छोड़कर जा नहीं सकता और जाना भी जरूरी है। उस व्यक्ति के मन में अहिंसा की भावना थी उसे उन बच्चों में अपने प्राण दिखाई दे रहे थें, कहीं उनकी मृत्यु न हो जाये, कुछ भी हो मैं इनकी रक्षा करूँगा गर मैं इनकी

रक्षा करूँगा तो मेरी भी रक्षा होगी। जैसे आपने मृगसेन धीवर की कहानी सुनी होगी उसने एक मछली की 5 बार रक्षा की तो अगले भव में उसकी पाँच बार रक्षा हुयी। उस व्यक्ति ने एक उपाय किया कि दीवार में एक छोटा सा छेद कराया, उस छेद के माध्यम से चिड़िया अंदर–बाहर आ–जा सकती थी। उस व्यक्ति ने देख लिया कि चिड़िया छेद से अंदर–बाहर आ जा रही है और तब वह बाहर से ताला लगाकर यात्रा पर गया। उस व्यक्ति के मन अहिंसा की भावना कहाँ से आयी? महानुभाव अहिंसा की भावना अंदर से आती है, यह हमारी आत्मा का स्वभाव है।

ब्रिटेन में किसी एक समारोह में महात्मा गाँधी जी की मूर्ति का लोकार्पण किया जाना था, लोकार्पण के लिये वहाँ का कोई बड़ा प्रतिष्ठित व्यक्ति पहुँचा। अनावरण होने को था तभी दो बालक खड़े हो गये, बोले आप इसका लोकार्पण नहीं कर सकते? उनसे पूछा क्यों? वे बोले आपके अंदर इस मूर्ति का अनावरण करने की पात्रता नहीं है, क्षमता नहीं है। क्यों, हमारे अंदर पात्रता क्यों नहीं है? क्योंकि महात्मा गाँधी जी तो अहिंसा मूलक थे और आपकी फैक्ट्री में अस्त्र–शस्त्र बनाये जाते हैं आप हिंसा की सामग्री बनाते व बेचते हैं आप अनावरण नहीं कर सकते। पूरी सभा दंग रह गयी और उन दोनों बालकों से गाँधी जी की मूर्ति का अनावरण कराया गया।

महानुभाव! अहिंसा के संबंध में आज से 1900 वर्ष पहले आचार्य भगवन् श्री समंतभद्र स्वामी जी ने वृहद्स्वयंभू स्तोत्र में नमिनाथ भगवान् की स्तुति करते हुये लिखा है–

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमं,
न सा तत्रारम्भोऽस्त्य णुरपि च यत्राश्रमविधौ
ततस्तत्सिद्धयर्थं परम करुणो ग्रन्थमुभयं,
भवानेवात्याक्षीन्नच विकृतवेषोपधिरतः।।4।।

अहिंसा प्राणियों के लिये परम ब्रह्म है, अहिंसा ही जगत् जननी है, अहिंसा ही परमात्मा है, अहिंसा ही ज्ञान है, अहिंसा ही तप–त्याग है, अहिंसा ही समता व साधना है। अहिंसा नहीं है तो कुछ भी नहीं है। अहिंसा के बिना सभी धर्म शून्य की तरह से हैं। जहाँ तक अहिंसा है वहाँ तक सुख और शांति का वातावरण है। अहिंसा एक ऐसा वृक्ष है जिसके नीचे शांति की शीतल छाया प्राप्त होती है। हिंसा एक ऐसी काली रात्रि है जो जहाँ भी रहती है वहाँ पर नियम से दुःख है, अशांति है, कलह है और साक्षात् नरक जैसा ही है। जहाँ हिंसा है वहाँ दुर्व्यसन हैं, दुष्कृत्य हैं। अहिंसा जहाँ है वहाँ राम राज्य जैसा साम्राज्य है, वहाँ अमन चैन शांति है। उस अहिंसा को प्राप्त करने के लिये अपने अंदर से ही भावना भाओ। आज शासन जो भी व्यवस्था बना रहा है सब अहिंसा के लिये, ट्रेफिक पुलिस वाला खड़ा है अहिंसा के लिये, कोर्ट कचहरी है अहिंसा के लिये, पुलिस स्टेशन है अहिंसा के लिये जो भी व्यवस्था बनायी जा रही है सब अहिंसा के लिये है।

एक किसी माननीय नेता जी ने आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी महाराज से पूछा, महाराज जी! आप अहिंसा के बारे में बहुत कुछ कहते हैं, अहिंसा से जीवन कैसे चलेगा? महाराज जी ने कहा–अहिंसा के बिना जीवन नहीं चल सकता, अहिंसा के लिये ट्रेफिक पुलिस लगाया कहीं accident नहीं हो जाये, अहिंसा के लिये सुरक्षाकर्मी लगाये जाते हैं, अहिंसा के लिये डॉक्टर्स हैं, अहिंसा के लिये सभी कायदे–कानून बनाये जाते हैं, अहिंसा के लिये संविधान लिखा, अहिंसा की रक्षा के लिये ही सभी कर्त्तव्यों का पालन किया जाता है, अहिंसा के लिये ही विधानसभा–लोकसभा है, अहिंसा के लिये ही सभी व्यवस्थायें की जाती हैं।

हमारे देश की परंपरा सदैव अहिंसक रही है। देश के महान् क्षत्रिय राजा धार्मिक व शाकाहारी थे। राम का संदेश

लेकर जब हनुमान सीता के समीप पहुँचे तब सीता ने उन पर राम के अनुचर होने का विश्वास नहीं किया। सत्यता ज्ञात करने के लिए उन्होंने हनुमान से राम के रहन–सहन खान–पान आदि के विषय में पूछा, तब हनुमान ने बताया

न मांसं राघवो भुक्ते, न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं, भक्तमश्नाति केवलम्।।–वा. रामा.

इक्ष्वाकुवंशी राम मांसाहार नहीं करते वे शाकाहारी हैं, वे मधु का भी सेवन नहीं करते। चावलादि का ही सेवन करते हैं। तभी सीता को उसके राम के अनुचर होने का विश्वास हुआ।

महानुभाव! भारत एक शांति प्रधान अहिंसात्मक देश है। यदि हम शान्ति चाहते हैं तो अहिंसा की छत्रछाया में ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। सुरक्षा चाहे व्यक्ति की हो या परिवार की देश की हो या प्राणी मात्र की, उसके लिए अहिंसा की अत्यंत आवश्यकता है। इस विशाल विश्व की रक्षा करनी है तो स्कूल, कॉलेज आदि स्थानों में अहिंसा की शिक्षा देनी होगी, अहिंसा को समझना व समझाना होगा। हमारे देश में सभी महापुरुषों ने अहिंसा की शिक्षा दी क्योंकि समस्त संसार को सुरक्षित रखने वाला कोई है तो वह है 'अहिंसा'।

अहिंसा की रक्षा ही आत्मा की रक्षा है, अहिंसा की रक्षा ही सुख–शांति को प्राप्त करने का मूल मार्ग है इसीलिये हम सभी उस अहिंसा को प्राप्त करें, अहिंसा की समृद्धि करें, अहिंसा हमारे आत्म प्रदेशों में वृद्धि को प्राप्त करे इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘अपरिग्रह’

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी के शाश्वत सिद्धान्त जीवन में उसी प्रकार सुख और शांति के निमित्त बनते हैं जिस प्रकार शक्कर के दाने पानी–दूध में घुलकर के अपनी मिठास छोड़ देते हैं। भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्त जीवन में सुख–शांति तथा आनंद को घोलने वाले होते हैं। दूध–पानी में गुड़, शक्कर, मिशरी आदि की मिठास से ही मीठापन आयेगा। जिस पदार्थ में स्वयं मिष्टपना नहीं है वह पदार्थ कितना भी डाल दो उससे जल–दूध मीठा नहीं होगा। मुट्ठी भर शक्कर के माध्यम से गिलास का पानी मीठा हो गया। शक्कर के वर्ण का नमक चाहें मुट्ठी भर डालो, चाहे बोरा भर डालो तब भी गिलास का पानी मीठा नहीं हो सकता। ऐसे ही जीवन में सुख–शांति को प्राप्त करने का एक ही मार्ग था, एक ही मार्ग है और एक ही मार्ग होगा, वह है–धर्म।

धर्म के संबंध में पूर्व में देखा कि धर्म है–अहिंसा। अहिंसा के बिना कहीं भी, कभी भी, किसी को भी चाहे सब कुछ मिल जाये, पर सुख–शांति नहीं मिल सकती। सुख–शांति का वही एक बीज है। नीम का पेड़ जब भी पैदा होगा तो नीम के बीज से ही होगा, आम का पौधा आम के बीज से ही होगा। बाग में नीम का पौधा लगाने की ख्वाहिश है तो या तो नीम का बीज बोना पड़ेगा या नीम का पौधा उखाड़ कर लगाना पड़ेगा। अन्य हजारों पेड़ लगाने से वह वृक्ष नीम का वृक्ष नहीं बनेगा ऐसे ही जीवन में अन्य अनेकों कार्य करने से अहिंसा नहीं बनती और बिना अहिंसा के जीवन में सुख शांति नहीं आती।

अहिंसा एक ऐसा विराट व्यक्तित्व है जिसके अंग और उपांग भी हैं। मनुष्य का पूरा शरीर होता है मात्र मनुष्य के सिर को मनुष्य नहीं कहते, सिर्फ हाथ–पैर को मनुष्य नहीं कहते,

केवल धड़ को मनुष्य नहीं कहते, मनुष्य अखण्ड है। उसका कोई भी अंग काटकर अलग रख दिया जायेगा तो मनुष्य का समग्र व समीचीन रूप सामने नहीं आ पायेगा। ऐसे ही अहिंसाधर्म को पूर्णतः समझने के लिये सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन्हें समझना भी जरूरी है, अहिंसा को समझने के लिये राग और द्वेष क्या है उसे समझना भी आवश्यक है। अहिंसा को समझने के लिये क्रोध मान, माया, लोभ क्या है इसे समझना भी जरूरी है, अहिंसा को समझने के लिये पाप प्रकृतियाँ क्या हैं इन्हें जानना भी जरूरी है। किसे छोड़ने से अहिंसा पूर्ण होती है और किसे ग्रहण करने से अहिंसा पूर्ण होती है यह जानना भी आवश्यक है।

प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मों से युक्त होती है उसमें नास्तिकपना भी होता है तो आस्तिकपना भी होता है। सात भंग के माध्यम से वस्तु तत्त्व का यथार्थ निर्णय किया जा सकता है, ऐसे ही अहिंसा शब्द कह रहा है जन हिंसा का त्याग हो गया, हिंसा भाव का अभाव हो गया, हिंसक वचनों का अभाव हो गया, हिंसक प्रवृत्ति नष्ट हो गयी तो अहिंसा अपने आप प्रादुर्भूत हो गयी। हिंसा का अभाव ही अहिंसा है। अंधकार का अभाव ही प्रकाश है। जिस प्रकार अंधकार का अभाव किये बिना प्रकाश नहीं मिल सकता ऐसे ही हिंसा का परित्याग किये बिना अहिंसा प्रादुर्भूत नहीं हो सकती। अहिंसा की रक्षा के लिये सत्य है, प्रेम–वात्सल्य है, मैत्री और कारुण्य भाव है, अहिंसा की रक्षा के लिये सहयोग और परोपकार की भावना है। भगवान् महावीर स्वामी के प्रमुख सिद्धान्त 'अपरिग्रह' इस संबंध में थोड़ी सी चर्चा करें।

परिग्रह का अर्थ है जो चारों तरफ से आत्मा को घेरता है। चाहे वह मुट्ठी में है, वह मुट्ठी का परिग्रह भी आत्मा को चारों तरफ से जकड़ कर रखता है। चाहे वस्तु बाहर रखी है किन्तु मन में विकल्प चल रहा है तो आत्मा के प्रदेश उससे बंध गये,

जीव उससे घिरा हुआ है। मूर्च्छा परिग्रह है। जिस वस्तु में व्यक्ति की आसक्ति होती है वह वस्तु उसका परिग्रह है चाहे वह वस्तु चेतन हो अथवा अचेतन।

आपके पास पूर्व पुण्य के उदय से जो कुछ भी इष्ट वस्तुयें प्राप्त हुयी हैं उनका सदुपयोग करो। स्वयं के लिये सदुपयोग करो, दूसरों के लिये सदुपयोग करो। आपके पास यदि दस व्यक्ति का भोजन है और आप अकेले भोजन करने वाले हैं तो नौ व्यक्तियों का भोजन बाँट दो, तुम ये न सोचो ये तुम्हारा भोजन है। आपने नौ व्यक्तियों का हिस्सा छीन लिया है इसे समानता से बाँटो, समानता का व्यवहार करो। एक व्यक्ति कहता है मुझे तो मेरे पूर्व पुण्य से मिला है सामने वाले का पाप का उदय है इसीलिये इसे नहीं मिला मैं इसे अपना क्यों दूँ? ऐसे शब्द कहने वाला व्यक्ति अहंकारी है वह आज अपने पुण्य का दुरुपयोग कर रहा है। ठीक है आपको पूर्व पुण्य से मिला है, दूसरे को आगे मिलेगा। तुमने आज उसको भोजन नहीं दिया तो तुम भी रोटी के लिये तरस जाओगे। जो वस्तु आपके पास है उसे आज देंगे तो आगे मिलेगा, नहीं देंगे तो नहीं मिलेगा। वस्तु को देना सीखो। देने से वस्तु मिलती है न देने से नहीं मिलती है। आप जानते हैं जिसने दिया उसे मिला, जिसने रखा तो उसके पास रखा ही रह गया।

आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी ने अष्ट पाहुड़ में परिग्रह त्याग का उपदेश दिया। अंतरंग परिग्रह के साथ बहिरंग परिग्रह का त्याग भी आवश्यक है और बहिरंग परिग्रह के साथ अंतरंग परिग्रह का त्याग भी आवश्यक है। मात्र बाह्य परिग्रह से रहित निष्परिग्रही नहीं कहला सकता अन्यथा वन्य पशु आदि को परिग्रह रहित माना जाता। तत्काल जन्म लिया हुआ नवजात शिशु भी परिग्रह रहित नहीं होता। जब तक जीव के परिणाम

राग–द्वेष रूप हैं, जब तक संसार–शरीर–भोगों में आसक्ति है, वस्तु को प्राप्त करने का भाव है तब तक अपरिग्रही नहीं हो सकता। यहाँ तक कि एकेन्द्रिय जीवों में भी परिग्रह संज्ञा पायी जाती है, वे भी अपनी जड़ों से पानी सोख लेते हैं, यदि जड़ के आस–पास धन गड़ा हो तो जड़ें उस तक पहुँचकर लिपट जाती हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों में परिग्रह संज्ञा है। जिसके चित्त में संसार है तो बाह्य परिग्रह न होते हुए भी वह परिग्रही है, वही अनिष्टकारक है और दीर्घ संसार का कारण है और इसके विपरीत बाह्य में कितना निःसीम वैभव ही क्यों न हो किन्तु चित्त में संसार नहीं है तो वह किंचित् भी पाप का कारक नहीं हो सकता। जैसे–तीर्थंकर केवली के समवशरण में निःसीम वैभव होते हुए भी उनसे अलिप्त हैं, वे तो संसार में हैं किन्तु संसार उनमें नहीं है।

परिग्रह प्राणी के लिए नवग्रहों से भी अधिक कष्टदायक है और वास्तविकता तो यह है जिसके पास ये परिग्रह है, उसको ही नवग्रह प्रभावित करते हैं, पीड़ा आदि दे सकते हैं। परिग्रह अत्यंत कष्टकारी है तभी तो भगवान् महावीर स्वामी ने अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त दिया है। अरे! यदि पूर्ण रूप से परिग्रह त्याग नहीं कर सकते तो कम से कम अनावश्यक परिग्रह का त्याग कर अनेक पापों व कष्टों से तो बच सकते हैं।

एक व्यक्ति अपने घर पर भोजन कर रहा था, उसका पड़ोसी उसके घर आ गया, उसने पड़ोसी को भोजन करा दिया पड़ोसी चला गया। संयोग की बात दूसरे दिन उसके घर में आग लग गयी अब वह कहाँ भोजन करे। उसने पूर्व दिन पड़ोसी को भोजन कराया था पड़ोसी ने बुला लिया भैया! आओ तुम चिंता न करो मेरे घर पर भोजन करो। कल उसने पड़ोसी से कहा था मेरा धन तेरे लिये है, कभी कोई बात पड़े तो ले लेना, आज

पड़ोसी ने उससे कह दिया चिंता न कर मेरा धन तेरे लिये है। और जो व्यक्ति ये कहता है कि मैं तुझे क्यों दूँ, मैंने कमाया है मेरे पुण्य का फल है मैं तुझे नहीं दूँगा तो पाप कर्म के उदय में उससे यही कहा जायेगा कि तेरे पाप कर्म का उदय है तू ही भोग मैं तुझे अपना धन क्यों दूँ।

एक व्यक्ति धन कमाने के लिये विदेश जाता था। जब विदेश का व्यक्ति यहाँ आया था तब उसने विदेशी व्यक्ति का सम्मान किया था उसे अपना मित्र बनाया था, अब वह विदेश गया व धन कमाया किन्तु संयोगवशात् उसका धन लुट गया, धन नष्ट हो गया। विदेशी मित्र ने कहा तू चिंता न कर मैं तेरे साथ हूँ। पूर्व में उस व्यक्ति ने विदेशी व्यक्ति की सहायता की, परोपकार किया तो आज उस विदेशी व्यक्ति ने उसकी सहायता की। महानुभाव! यह जीवात्मा भी इस शरीर को छोड़कर आगे जायेगा, इस शरीर से जिस–जिस को जो–जो देकर गया वह व्यक्ति या अन्य व्यक्ति इस आत्मा को वहाँ पर देने वाले होते हैं। जिसने दिया है उसे नियम से मिला है। जो देता है उसे मिलता है और जो देगा उसे मिलेगा ही मिलेगा। रख जायेगा तो उसे कहीं नहीं मिलेगा।

समाज में असमानता का व्यवहार हिंसा को जन्म देता है अतः समाज में समानता का व्यवहार रखो। आपका पुण्य है तो उसका सदुपयोग करो। जो व्यक्ति पुण्य से धन कमाता है वह व्यक्ति अपने धन को परोपकार में लगाने की भावना रखता है और जिस व्यक्ति ने पाप से कमाया है उसका धन परोपकार में नहीं लगता, वह धन को तिजोरी में बंद कर देता है, धन को फॉल सीलिंग में छिपा देता है किन्तु जब incomtex का छापा पड़ता है तब वे उसे लेकर चले जाते हैं। वह धन उसका नहीं था, यदि वह उस धन को पुण्य में लगा देता तो लौटकर आ

जाता, रखा हुआ कभी बढ़ता नहीं है। किसान भी बोरा सील कर अनाज को अपने घर में रखा रहे तो अनाज में घुन लग जायेगा, अनाज नष्ट हो जायेगा, उसे आगे वाली फसल नहीं मिलेगी। वह उस बीज को उत्तम भूमि में बो देता है, सिंचाई करता है, समय पर रक्षा करता है, खाद–पानी देता है तो वही भूमि उसे एक बीज के बदले 10–20–50–100 बीज तक देती है। ऐसे ही जिसने अच्छी भावनाओं के साथ किसी गरीब व्यक्ति की, किसी जरूरतमंद व्यक्ति की सहायता की हो, मन–वचन–काय एवं धन से सहायता की हो, जैसा भी किया वैसा उसे निश्चित मिलता ही मिलता है। जिसने दिया ही नहीं उसे मिलेगा कहाँ से, नहीं मिल सकता।

महानुभाव! धर्मात्मा वह है जो अपनी रोटी को बाँट करके खाये और अधर्मी वह है जो दूसरों की छीन करके खाये। ईमानदार वह हो सकता है जो अपनी थाली की रोटी खाये दूसरों की छीने नहीं और दूसरों को दे नहीं किन्तु ऐसा व्यक्ति धर्मात्मा नहीं हो सकता है। धर्मात्मा बनना है तो यदि सामने भूखा व्यक्ति बैठा है तो उससे पहले पूछो भैया! तूने भोजन किया या नहीं, मैं पहले तुझे भोजन कराऊँगा फिर मैं खाऊँगा यह धर्मात्मा की पहचान है। जो व्यक्ति आज ज्यादा पैसा कमाकर बैंकों में रख रहे हैं क्या कह सकते हैं कब नोटबंदी हो जाये। ज्यादा पैसा रखकर वे दूसरों को देना नहीं चाहते, सोचते हैं मेरा पैसा मेरे साथ हमेशा रहेगा। अरे! तुम हमेशा नहीं जीओगे मृत्यु निश्चित रूप से आयेगी ही। पैसों में आसक्त रहोगे तो–**'बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'** बहुत आरंभ–परिग्रह रखने से नरक आयु का बंध होगा, नरक में जाना पड़ेगा। आचार्य श्री सकलकीर्ति जी मुनिराज ने मूलाचार प्रदीप में कहा है–

संगादिमूर्च्छया पुंसां दुर्ध्यानं जायतेतराम्।
दुर्ध्यानाच्च महापापं, पापाद् दुःखपरंपरा।।168/11।।

परिग्रहादिक में ममत्व रखने से मनुष्यों के अशुभ ध्यान होता है, अशुभध्यान से महापाप होता है और पाप से अनेक दुःखों की परंपरा प्राप्त होती है।

यदि धन को जमीन में गाड़कर रखा तो सर्प आदि बनकर वहाँ रहना पड़ेगा या बैंक में रखा तो कौवा बनकर बैंक के ऊपर काँव–काँव करते रहोगे किन्तु धन मिलेगा नहीं। धन की वृद्धि करने का एक ही उपाय है जैसे किसान अपने धन को उत्तम भूमि में बोकर के वृद्धिंगत करता है ऐसे ही धनी व्यक्तियों को अपने धन का सदुपयोग करना है।

अगर धन रक्षा है मंजूर, तो धनवानों बनो दानी।
कुयें से गर न निकलेगा, तो सड़ जायेगा पानी।।

और भी कहा–

पानी बाड़े नाव में, घर में बाड़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।

यह परिग्रह ऐसी बेड़ी है जो आत्मा को जकड़ लेती है। जो साधु होता है वह समस्त परिग्रह का त्याग करता है और जो गृहस्थ होता है वह सर्वपरिग्रह का त्याग भले ही न कर पाये किन्तु वह परिग्रह का परिमाण बना लेता है। मेरे पास इससे ज्यादा (सीमा से ज्यादा) आयेगा तो मैं परोपकार में लगा दूँगा। आज भी भारत वर्ष में ऐसे कई व्यक्ति हैं जिनका नियम है कि इससे ज्यादा धन मेरे पास आयेगा तो मैं दूसरों के परोपकार में लगा दूँगा अपने घर लेकर नहीं आऊँगा। मेरे पास तो पर्याप्त है। जो दूसरों को खिलाकर खाता है वह जीवन में कभी भूखा नहीं रहता, जो दूसरों का छीनकर खाने की चेष्टा करता है उसका पेट

कभी नहीं भरता। आपके पास जितना परिग्रह है उसका हिसाब लगा लो और जितने की आवश्यकता है उतना रख लो कि मेरा काम इतने से चल जायेगा उसके बाहर का मुझे नहीं चाहिये। यदि आप बाहर का त्याग करते जाओगे तो आपके आस–पास धन की कमी कभी नहीं आएगी और यदि आपने सम्पूर्ण धन को बाउण्ड्री खींचकर अंदर कर लिया तो अंदर किया हुआ तुम्हारे साथ नहीं जायेगा, काम नहीं आयेगा। जो तुमने छोड़ दिया वह दौड़कर के तुम्हारे पास अवश्य आयेगा।

महानुभाव! जो व्यक्ति बॉल को अपने हाथ में पकड़े रहता है, बॉल उससे जमीन में छूट गयी तो पकड़ में न भी आये किन्तु जो बॉल को ऊपर उछालता है तो बॉल उसकी ओर नीचे आ जाती है, उसके पास आती है। ऐसे ही जो अपने धन को दूसरे के लिये व्यय करता है उसके पास धन लौट करके आता है। ज्ञानी पुरुष वह है जो दान देता है। जिसने दिया उसके पास ज्ञान का 'दिया' अर्थात् दीपक एवं जिसने नहीं दिया उसके पास अज्ञान का अंधेरा।

तो परिग्रह का परिमाण करो, जो धन पुण्य से आता है उसे दान करो, और परिग्रह में आसक्त मत होओ क्योंकि सुख–शांति की प्राप्ति परिग्रह के त्याग से मिलती है। जब तक देश में त्याग और दान की भावना बलवती है, जीवंत है तब तक देश गरीब नहीं हो सकता। जब तक व्यक्ति दान व परोपकार की भावना रखता है तब तक वह कभी निर्धन नहीं हो सकता है। विचारों में उदारता, आचरण में पवित्रता और वाणी में मधुरता जब तक रहती है तब तक उस व्यक्ति का कोई भी बुरा नहीं कर सकता। जो व्यक्ति स्वयं के पास न होते हुये भी दूसरों को देने की भावना रखता है एवं जो व्यक्ति होने पर हमेशा देता है और कुछ न दे

सके तो कम से कम देने की भावना, देने की बात, मीठे वचन बोले उसे दुनिया में कोई दुःखी नहीं कर सकता। किन्तु जो विचारों में संकीर्णता, वाणी में कटुता/कड़वाहट व आचरण में कठोरता बर्तता है उसे जीवन में चाहे धन का पहाड़ जैसा ढ़ेर भी मिल जाये किन्तु समीचीन सुख–शांति नहीं मिल सकती। जैसे अग्नि के कुण्ड में शीतलता नहीं मिलती ऐसे ही परिग्रह के बीच में सुख–शांति संभव नहीं।

मूलाचार प्रदीप में कहा है–

संगत्यागसमो धर्मो न जगच्छ्रीसुखाकरः।
संगमूर्च्छानिभं पापं न महच्छ्वभ्रदुःखदम्।।169/11।।

इस संसार में परिग्रह के त्याग के समान अन्य कोई धर्म नहीं है क्योंकि यह धर्म तीनों लोकों की लक्ष्मी और सुख की खानि है। इसी प्रकार परिग्रह में मूर्च्छा रखने के समान अन्य कोई पाप नहीं है क्योंकि परिग्रह में मूर्च्छा रखना महानरक के दुःख देने वाला है।

महानुभाव! परिग्रह परिमाणव्रत जिनशासन में श्रावक का व्रत कहा गया है। साधु के लिये कहा वह सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करे। वैदिक परम्परा में अकिंचित् व्रत 'दरिद्रव्रत' होता है वह अकिंचित् व्रत धारण करने वाला व्यक्ति सुखी रहता है जो इस व्रत को धारण नहीं करता है वह सुखी नहीं रहता है। फकीर हमेशा मस्त रहता है, नाचता रहता है, अमीर धन को देख–देखकर सुखी रहता है नष्ट हो गया तो दुःखी, कोई चुरा ले गया तो दुःखी, कम आ रहा है तो दुःखी इसलिये अमीर के जीवन में धन का त्याग किये बिना सुख नहीं आता। जैसे खिड़की खोले बिना प्रकाश, हवा नहीं आती ऐसे ही अपने हृदय के कपाट

खोले बिना और धन को बाहर डाले बिना उसकी जीवन नैया संसार सागर से पार हो नहीं सकती। यदि जीवन नैया को पार करना है तो जैसे नाव में से पानी उलीचते हैं ऐसे ही जिसमें मन आसक्त हो रहा है ऐसे धन को, दूसरों को देने की चेष्टा करो, भावना भाओ। यही आत्म कल्याण का शाश्वत मार्ग है। भगवान् महावीर स्वामी ने इस 'अपरिग्रह' को मूल सूत्र कहा, आधार कहा। आप परिग्रह का परिमाण करें अथवा अपरिग्रही बनें मैं आप सबके प्रति ऐसी भावना भाता हूँ। इन्हीं शब्दों के साथ.....

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'ब्रह्मचर्य'

महानुभाव! भगवान् महावीर स्वामी का जन्म एक उत्सव का प्रसंग है, जो आज भी हमें सुख–शांति का सूत्र देने में समर्थ है। भगवान् महावीर स्वामी आज हमारे बीच में नहीं हैं उनकी तपस्या हम प्रत्यक्ष में देख नहीं सकते, उनके उपदेश भी आज हमें प्राप्त नहीं हैं, जो प्राप्त हैं वे परोक्ष में हैं। उनका जीवन दर्शन जो प्रत्यक्ष में देखकर अनुभूति की जा सकती थी, उनके जीवंत जीवन को देखकर के जो हम अपने जीवंत जीवन को जीने की कला सीख पाते वह आज नहीं है। इसलिये आज भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्त ऐसा लग रहा है जैसे परे हो गये हों। उनका जीवन अत्यंत महत्वपूर्ण है, बड़ा विराट है।

आज का मनुष्य सोचता है वह जीवन आज असंभव है किन्तु आज हम भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों को पढ़कर के, सुनकर के, उनके बारे में स्मरण करके भी पुण्य का आश्रव कर सकते हैं, उस पुण्य भाग की प्राप्ति कर सकते हैं। गुड़ न मिले निरंतर गुड़ की चर्चा सुनने को भी मिले तो मन में गुड़ प्राप्ति की भावना जीवंत रहेगी। जिस क्षेत्र में गुड़ और गुड़ की वार्ता दोनों ही समाप्त हो जाती हैं वहाँ गुड़ प्राप्त करने की संभावना ही मिट जाती है। आज हमारा इतना पुण्य है भले ही भगवान् महावीर स्वामी हमारे प्रत्यक्ष नहीं हैं किन्तु आज भी ध्यान गम्य हैं, आज भी शास्त्रों के माध्यम से उनके जीवन का दर्शन किया जा सकता है। भगवान् महावीर स्वामी ने जो मार्ग अपनाया था शब्दों में वह आज भी हमारे पास है। उन शब्दों का अर्थ यदि हम समझने में समर्थ हैं तो भगवान् महावीर स्वामी की अनुभूति आज भी की जा सकती है।

आज प्रत्येक व्यक्ति सोचता है भगवान् महावीर स्वामी होते

किन्तु ये नहीं सोचता काश! हम भगवान् महावीर स्वामी के सिद्धान्तों को जीवन में अंगीकार करते। यदि महावीर स्वामी होते भी और हम उनकी बात को नहीं मानते तो उन भगवान् महावीर स्वामी के होने न होने का क्या महत्व? यदि महावीर स्वामी नहीं हैं तो इतनी फिक्र करने की कोई बात नहीं, चिन्तित होने का कोई ऐसा कारण नहीं, भगवान् महावीर स्वामी के संदेश आज भी जीवंत है, उनके मार्ग पर चलकर के हम अपनी मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

एक NCC के बच्चों की टीम अपने निर्देशक के अनुसार चल रही थी। अचानक उनके निर्देशक किसी accident में मृत्यु को प्राप्त हो गये, तो वे छात्र बड़े हताश–निराश–उदास हुये, कैसे करें, कहाँ जायें। तभी एक छात्र ने साहस करके कहा–हम इस जंगल में भी अपनी मंजिल को प्राप्त करने का साहस रखते हैं। उससे पूछा कैसे? वह बोला सर के द्वारा लिखा हुआ मानचित्र हमारे पास है, उनके द्वारा दिये निर्देश आज हमारे पास हैं, इस मानचित्र में लिखा है हमें कहाँ से जाना है, कहाँ मुड़ना है, कहाँ पुलिया है, कहाँ खाई है, कहाँ पहाड़–नदी है कहाँ शत्रु है ये सब निशान इस मानचित्र में दिये हैं। इस प्रकार वे NCC के छात्र अपने प्राणों की रक्षा करते हुये सकुशल अपने स्थान पर आ जाते हैं। जिस कार्य को करने के लिये चले थे उसमें विजय प्राप्त करते हैं।

ऐसे ही भगवान् महावीर स्वामी हमारे मार्गनिर्देशक आज हमारे बीच में नहीं हैं किन्तु उनके द्वारा बताये गये सूत्र, निर्देश, मानचित्र आज भी हमारे पास हैं। यदि निर्देशक के सामने भी वे NCC के छात्र उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते तो किसी न किसी संकट में फँस जाते, किसी आपत्ति में घिर जाते। उनके आदेश का पालन नहीं करते तो मृत्यु के समीप पहुँच सकते थे। उस समय भी उनके आदेश–निर्देश का पालन करना जरूरी था

वही उन्हें संकट से निकालकर के मंजिल तक पहुँचाने में समर्थ है। यदि वह निर्देशक नहीं है उनके संकेतों का पालन करके भी सफलता संभव है। इसी तरह भगवान् महावीर स्वामी के समय में रहकर के भी उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते तो भी हम अपनी आत्मा का हित नहीं कर सकते और आज भगवान् महावीर स्वामी के न होने पर भी उनकी आज्ञा का पालन करके उनके उपदेश–निर्देश का पालन करके हम अपनी आत्मा में सुख–शांति के बीजों का वपन कर सकते हैं।

किसान मृत्यु को प्राप्त हो गया तो क्या? किन्तु उसने अपने बेटे को यह सिखा दिया कि बीज ऐसे बोये जाते हैं, सिंचाई ऐसे की जाती है, वह बेटा अपने पिता के अभाव में भी खेती करके अपना पेट भर सकता है। एक डॉक्टर नहीं है तो क्या? मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र को शिक्षा देकर गया, औषधि का ज्ञान देकर गया कि यह औषधि अमुक–अमुक रोग में कार्य करती है, औषधि सेवन की विधि, किस औषधि को कितने अनुपात में लेना है तो वह पुत्र अपनी आजीविका चला सकता है। कोई रोगी औषधि का सेवन न करे तो डॉक्टर क्या करे? और डॉक्टर नहीं है, औषधि व उसके सेवन की विधि ज्ञात है तो अपने रोगों को दूर किया जा सकता है, स्वयं को निरोगी बनाया जा सकता है। भगवान् महावीर स्वामी आत्मा के डॉक्टर रहे उन्होंने जो निर्देश दिये, जो परहेज बताये, जो औषधि सेवन की विधि बताई, जो तत्त्वों का उपदेश दिया वह आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने उस समय महत्वपूर्ण थे। बस पालन करना जरूरी है।

भगवान् महावीर स्वामी के पाँच मुख्य सिद्धान्तों में ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त भी है। ब्रह्मचर्य व्रत का अर्थ होता है ब्रह्मस्वरूपी आत्मा में रमण करना/चर्या करना। श्रावकों की अपेक्षा से कहें तो शीलव्रत का पालन करना। शील अर्थात् स्वभाव। दूसरे शब्दों में

कहें तो पुरुषों के लिये स्वदार संतोष व्रत। अपनी स्वकीय परिणाई स्त्री को स्वीकार करना, उसमें ही संतुष्ट रहना या एक पत्निव्रत अथवा स्त्री की अपेक्षा से कहें तो 'सती' अर्थात् अपने पति में अनुरक्त और संतुष्ट। यह वर्तमान काल की अपेक्षा है। एक सामाजिक व्यवहार भी है जो व्यक्ति इस सामाजिक नियम का उल्लंघन करता है वह भी निंद्य होता है, लोकनिंदा को प्राप्त करता है, दुःखों को प्राप्त करता है और कानून का अपराधी कहलाता है, दण्ड को प्राप्त करने का अधिकारी है।

लोक व्यवहार में जहाँ सदाचार है, शीलव्रत का पालन होता है, स्वदार संतोषव्रत का पालन किया जाता है वहाँ पर आज भी सुख–शांति अमन–चैन है। जहाँ कदाचार है वहाँ दुःख है। विदेशों में कुछ मालूम ही नहीं कौन किसकी पत्नी–कौन किसका पति किन्तु भारतीय संस्कृति अनादि से इस बात पर जोर देती रही है कि हमें अपनी बह्म स्वरूपी आत्मा में रमण करना है किन्तु इसके पहले शीलव्रत का पालन करना है, स्वदार संतोष व्रत का पालन करना है। स्त्रियों को संकेत दिया सती होना है। सती होने का आशय पति की मृत्यु के साथ ही मरना नहीं है वरन् पति के दिवंगत होते ही अपने समस्त विषय वासनाओं की मृत्यु कर देना है, अपने कुभावों को उसके ही साथ तिरोहित कर देना और अपने मन को प्रभुभक्ति पूजार्चना में लगा देना है।

स्त्री हो या पुरुष शील का पालन दोनों के लिए आवश्यक है। पुरुष अपनी पत्नी के अतिरिक्त विश्व की समस्त स्त्रियों को माँ व बहन के रूप में देखे एवं स्त्री अपने पति के अतिरिक्त सभी पुरुषों के प्रति पिता व भाई के समान आचरण करे। अन्यथा व्यक्ति का शील नष्ट होने से उसका कुल, वैभव, बल, कीर्ति आदि सब नष्ट हो जाता है क्योंकि शील नाश से बड़ा पाप अन्य कोई नहीं। कहा भी है–

एकतः सकलं पापं शीलभंगोत्थमेकतः।
तयोः स्याच्चान्तरं नूनं मेरुसर्षपयोरिव।।

एक ओर सब पाप और एक ओर शीलभंग से उत्पन्न हुआ पाप रखा आए तो दोनों में निश्चय ही मेरु और सरसों जैसा अन्तर होगा। शीलभंग नरक आदि दुर्गतियों का कारण है और शील का पालन स्वर्गादि सुगति एवं मोक्ष का भी कारण है।

महानुभाव! जब शरीर में शक्ति होती है, जब शरीर में धातु–उपधातु बनती हैं तो सहज वैभाविक परिणाम के अनुसार सप्तम धातु शुक्र रज–वीर्य का क्षरण जननेन्द्रियों के द्वारा होता है। वह जननेन्द्रिय जब धातु का क्षरण करती हैं तो वह अधोमुखी होती हैं। जिसकी शक्ति अधोस्थान से निसर्गित होती है या नष्ट होती है तो वह जीव अधोगति को प्राप्त होता है और जो अपनी शक्ति को जननेन्द्रिय से थोड़ा ऊपर ले गया वह व्यक्ति तिर्यंच या मनुष्यगति में जाने का अधिकारी होता है, जो वक्षस्थल पर ले आया उससे उसका हृदय पवित्र होता है, शुद्ध होता है उससे वह देवगति का पात्र बनता है तथा जो अपनी इस सप्तम धातु को मस्तक तक ले गया वह बुद्धिजीवी बनता है उस ऊर्जा शक्ति का प्रयोग करके वह स्वपर कल्याण में निमित्त बनता है और जिसने अपनी शक्ति को ऊर्ध्वारोहण करके बह्मस्थान तक पहुँचा दिया वह नियम से सिद्ध पुरुष होता है, वह अपनी शक्ति का सदुपयोग करता हुआ लोक में भगवान् की तरह पूजा जाता है।

ऊर्ध्वगमन हमारी तपस्या से, त्याग से, संयम से, भक्ति–पूजा से संभव है। जल का स्वभाव अधोगमन है जल नीचे की ओर बहकर जाता है। जल में घनत्व ज्यादा हो जाये तो जल बर्फ बन जाता है वह बर्फ भी आकाश में उड़ नहीं सकती, बर्फ ऊपर फेंको तो नीचे ही गिरेगी, पानी भी फेंको तो नीचे ही आयेगा। केवल

एक ही उपाय है जल को ऊपर पहुँचाने का, जल गर्म करना प्रारंभ कर दो, जल गर्म होता जायेगा तो भाप बनकर ऊपर चला जायेगा भाप बनकर नीचे नहीं आयेगा। जब तक भाप है तब तक ऊपर रहेगा और भाप पुनः पानी की बूँद बन जायेगी तो नीचे आ जायेगी। ऐसे ही अपने शरीर की शक्ति को ध्यान–तपस्या के माध्यम से, संयम व्रतों के माध्यम से, त्याग–पूजा–भक्ति के माध्यम से, परोपकार के माध्यम से, सद्शास्त्रों के स्वाध्याय के माध्यम से, शीलव्रत का पालन करते हुये, उपवास आदि करते हुये उस अंतिम धातु को ब्रह्म स्थान तक ले जाना है।

महानुभाव! जब शरीर की शक्ति कम हो जाती है तब मनोबल काम करता है और मनोबल भी जब कमजोर हो जाये तब आत्मशक्ति जाग्रत हो जाती है। आत्मशक्ति को जाग्रत करने वाला व्यक्ति बाहर के पौद्गलिक पदार्थों का सेवन नहीं करता। यह शक्ति सब में है। किन्तु जानवर तपस्या नहीं कर सकते, नारकी व देव भी तपस्या नहीं कर सकते। एक मनुष्य ही है जो तपस्या करने में समर्थ है, वही संयम का पालन कर सकता, वही शास्त्र का स्वाध्याय करके आत्मा का ध्यान कर सकता है वही शील का पालन कर सकता है, वही मनुष्य अपनी मन–वचन–व तन की शक्ति को आत्महित में व परोपकार में लगा सकता है।

भवन्ति शीलव्रतरक्षणान् नरा,
नरामरा धीश्वर भोगभोगिनः।
अशेष दोषाञ्जनपुञ्जभञ्जनाः,
समग्र बोधादिगुणैरलङ्कृताः।।21।।

शीलव्रत की रक्षा करने से मनुष्य, नरेन्द्र तथा सुरेन्द्र के भोग भोगने वाले, समस्त दोष रूपी अञ्जन के समूह को नष्ट करने वाले और पूर्ण ज्ञान आदि गुणों से अलङ्कृत होते हैं।

'ब्रह्मचर्य' की साधना अनंत सुखों की जननी है, ब्रह्मचर्य चेतना का भोग है, जो चेतना चेतना में डूब जाती है वह ब्रह्मचर्य युक्त आत्मा कहलाती है और ब्रह्मचर्य युक्त आत्मा ही चेतना के समीप पहुँचने में समर्थ होती है। अन्य आत्मा जो अब्रह्म में अटकी हुयी हैं वह नहीं पहुँच सकती। जो व्यक्ति भोगी, विलासी दुर्व्यसनी होते हैं वे अपने चित्त को पवित्र नहीं कर पाते, अपने चित्त को एकाग्र नहीं कर पाते। जो व्यक्ति अपने मन को फालतू बातों से हटाकर एकाग्रचित्त कर लेते हैं, मन को प्रभुभक्ति, ध्यान व संयम में संलग्न कर लेते हैं वे ही ब्रह्मचर्य का पालन कर पाते हैं। व्यसनी–भोगी व्यक्ति कभी व्रती, संयमी नहीं बनना चाहता, वह तप नहीं करना चाहता, ध्यान में मन नहीं लगा पाता यहाँ तक कि पुण्य कार्य करने का उसका मन नहीं होता।

ब्रह्मचर्य आत्मा का अमृत है, उस अमृत का सेवन करना प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं। अमृत का सृजन कंठ से होता है आपने सुना होगा देवों के कंठ से अमृत निःसृत होता है इसलिये वे अमर कहलाते हैं और ब्रह्मचर्य अमृत का झरना है जो अंतरंग से निःसृत होता है। ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्मा का अमृत चखा जाता है। ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्मा अजर–अमर अवस्था को प्राप्त होती है, ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्मा अंतरंग से संतुष्ट होती है, ब्रह्मचर्य के माध्यम से आत्मा जन्म–जरा–मृत्यु पर जय प्राप्त करती है, समस्त विकारी भावों पर विजय प्राप्त करती है, घाति–अघाति कर्मों पर, भाव कर्म, नो कर्मों पर विजय प्राप्त करती है किन्तु अब्रह्म में लगी आत्मा कीचड़ में सड़ते हुये किसी पदार्थ की तरह से संष्लिष्ट है।

नरसुरपतिवंद्यं स्वर्गसोपानभूतं, सकलगुणसमुद्रं धीरवीरैर्निषेव्यम्।
शिवसुख शुभखानिं सर्वयत्नेन पूतं, भजत गतविकारं ब्रह्मचर्यं सदार्च्याः।।229/1।।

आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज कहते हैं कि यह ब्रह्मचर्य महाव्रत इंद्र, नरेन्द्र आदि सबके द्वारा वंदनीय है, स्वर्ग के लिए सीढ़ी के समान है, समस्य सद्‌गुणों का समुद्र है, धीर–वीर पुरुष ही इसका सेवन कर सकते हैं, अत्यंत शुभ ऐसे मोक्ष सुख की यह खानि है, अत्यंत पवित्र है और विकार रहित है। इसलिए पूज्य पुरुषों को बड़े प्रयत्न से सदा इसका पालन करते रहना चाहिए।

यह जीव बाहर में सुख खोजता है वह नहीं जानता कि अमृत कभी बाहर नहीं मिलता बाहर तो विष ही मिलता है। यह अब्रह्म विष है जो बाहर से अपनी तृप्ति करना चाहता है, बाहर से अपनी प्यास बुझाना चाहता है। जो बाहर में सुख–शांति–संतोष खोजता है वह समझो जहर पीता है। जहर बाहर से आता है अमृत अंदर से आता है। कोई भी देव बाहर से अमृत लेकर नहीं पीते, जैन दर्शन कहता है अमृत प्रत्येक देव के कंठ में रहता है किन्तु वह अमृत नारकियों, तिर्यंचों व मनुष्यों में नहीं होता किन्तु हाँ जो योगी ध्यान में लीन होते हैं उन्हें बाहर के भोजन की आवश्यकता नहीं। अन्य नारकियों द्वारा दी गई यातनायें, कष्ट, दुःख नारकियों के लिये विष की तरह से हैं। जहर जिन जीवों के मुख में होता है जैसे बिच्छु के डंक में हो, सर्प के मुख में हो, नेवला के दंत में हो चाहे जहाँ भी हो विषैले जानवर उस विष से कभी नहीं मरते। हमारे अंदर का विष हमें मार नहीं सकता, हम जब भी मरेंगे बाहर के विष से मरेंगे अर्थात् विष बाहर से आता है।

उपयोग का बाहर में चले जाना विष का सेवन करना है, अंतरंग में उपयोग का चले जाना अमृत का सेवन करना है। अमृत अंतरंग में है और विष बहिरंग में है। जितना बाहर में भटकोगे उतना विष का पान करोगे, उतना कीचड़ में सनोगे। जितना अंतरंग में जाओगे उतना आप अपने निकट पहुँच जाओगे, अमृत के पास पहुँच जाओगे। अंदर में अमृत का खजाना है। यह

ऐसा अमृत है जिसका पान कितना भी करते जाओ फिर भी खत्म नहीं होता। बाहर का विष ऐसा है कि एक बूँद भी चखा तो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

महानुभाव! आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी, उमास्वामी जी, पूज्यपाद स्वामी जी, अकलंक देव इत्यादि आचार्यों ने ब्रह्मचर्यव्रत के संबंध में कहा है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति साधु पुरुष है।

रक्ष्यमाणे हि वृंहन्ति, यत्राहिंसादयो गुणाः।
उदाहरन्ति तद्ब्रह्म, ब्रह्मविद्या विशारदाः।।

जिसकी रक्षा करने पर अहिंसादि गुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं, ब्रह्मविद्या के ज्ञातापुरुष उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं।

ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति ही अहिंसक हो सकता है, वही सत्यनिष्ठ हो सकता है। वही व्यक्ति अपरिग्रह धर्म (व्रत) का पालन कर सकता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति पर पदार्थों में आसक्त नहीं होता और जो ब्रह्मचर्य की साधना नहीं करता है वह कामी–क्रोधी–मोही–लोभी–हिंसक–असत्यवादी–चोर होता है क्योंकि वह एक विषय का सेवन करने के लिये कोई भी गैरकानूनी कार्य कर सकता है।

अपने मन पर नियंत्रण नहीं कर पाना इसका आशय है वह समस्त पापों में अनुरक्त हो सकता है और जिसने अपने मन पर नियंत्रण कर लिया, ब्रह्मचर्य की साधना कर ली तो उसे अब कोई भी वस्तु लुभा नहीं सकती, कोई भी संसार की स्त्री लुभा नहीं सकती। पानी को पाइप के द्वारा ऊपर ले जाया जा सकता है, बाल्टी भर कर ऊपर ले जाओ किन्तु पानी सहजता में ऊपर नहीं जाता ऐसे ही हमें अपनी शक्ति का ऊर्ध्वगमन करना है। अपनी शक्ति धातु–उपधातु का सही उपयोग यही है कि वह

नीचे की ओर निःसृत न हो ऊपर की ओर बढ़े। ऊपर की ओर लेने के लिये योगीजन कई बार योगा करते हैं, आसन लगाते हैं, प्राणायाम करते हैं, श्वसन क्रिया के द्वारा किस प्रकार ऊपर ले जाते हैं इससे उनका भाल शोभायमान होता है, दिव्य तेज आता है। अल्प भोजन करने के बावजूद भी, एक बार भोजन करने के बाद भी उनका शरीर दीप्ति–कांति से युक्त होता है और कई बार भोजन करने के बाद भी उस भोगी का मन पर में ही रमण करता रहता है।

महानुभाव! कहने का अभिप्राय यह है कि भगवान् महावीर स्वामी ने बाल्यअवस्था से ही ब्रह्मचर्य की साधना की, उन्होंने अब्रह्म का सेवन किया ही नहीं। अपनी आत्मा को समझकर अपनी आत्मा में ही रमण करने का पुरुषार्थ किया और वे इस ब्रह्मचर्य की साधना से परमात्म पद को प्राप्त कर गये। अन्य तीर्थंकरों ने भी बाल्यअवस्था से साधना की, कुछ तीर्थंकर ऐसे भी रहे जिन्होंने गृहस्थ जीवन में रहकर के पुनः उसका परित्याग किया। भगवान् महावीर स्वामी का यह ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त सबके जीवन में जीवंतरूप ले और हम सभी अपनी ब्रह्मस्वरूप आत्मा में रमण करें, इन्हीं सद्भावनाओं के साथ....।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘आत्मसंतोष का बीज–स्व–पर’

महानुभाव! जीवन में आत्मशान्ति, आत्मसुख, आत्मसन्तोष, आत्मवैभव एवं आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये यदि कोई बीजरूप सिद्ध हो सकता है तो वह एक ही सुकृत है **‘उपकार’**। उपकार एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे एक साथ दो कार्य होते हैं स्व उपकार और पर उपकार। जैसे दीपक के जलने से अंधकार का तिरोहित होना व प्रकाश का होना, प्रकाश में ऊष्मा का होना व शीत को दूर करना, प्रकाश में दाहक और पाचक शक्ति का होना, अपक्व को पकाना और अनावश्यक संग्रह को नष्ट करना ये शक्तियाँ सहज में पायी जाती हैं। जल में शीतलपना व तरलपना सहज में पाया जाता है, हवा में बहना–गतिशीलता का गुण सहजता में पाया जाता है ऐसे ही उपकार जब भी किया जाता है स्व और पर दोनों का एक साथ ही होता है। यह बात अलग है कि कभी दृष्टि स्व उपकार पर होती है तो कभी दृष्टि पर उपकार पर। जैसे एक सिक्के के दो पहलू होते हैं एक पहलू को कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता दोनों पहलू एक साथ ही पकड़ में आते हैं। कोई नदी एक किनारे से नहीं बहती उसके दो किनारे एक साथ होते हैं, कोई पक्षी एक पंख से नहीं उड़ता दो पंख एक साथ ही होते हैं, दृष्टि एक बार में दोनों ओर हो या न हो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। आप कह सकते हैं कुछ लोग संसार में स्वार्थी हैं अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, वे कभी परोपकार करते ही नहीं? सत्य मानिये जो परोपकार नहीं करते वे कभी स्व उपकार भी नहीं करते।

दूसरी ओर आप कहेंगे कुछ लोग ऐसे भी हैं जो संत महात्मा हैं, ऋषि–मुनि हैं जो केवल अपने ही कल्याण में लगे हुये हैं वे कभी परोपकार करते ही नहीं, जंगलों में रहते हैं, नदी–पर्वतों की

चोटी पर, गुफाओं, कन्दराओं में रहते हैं स्वउपकार कर रहे हैं उनसे पर उपकार कहाँ हो रहा है? सच मानिये वे कभी अकेला स्वउपकार नहीं करते, निःसंदेह वे पर उपकार भी कर रहे हैं। यह कैसे संभव है? संभव ऐसे है कि जिस संत महात्मा ने अपनी आत्मा को निर्मल व विशुद्ध बनाने के लिये चित्त को निर्मल किया है, अपने योगों की प्रवृत्ति को विशुद्ध बनाया है,जिसके शरीर के माध्यम से किसी प्राणी का घात नहीं होता, जिसके वचनों के माध्यम से किसी को कष्ट नहीं होता और जिसके मनोविचारों के माध्यम से कभी किसी के अहित की भावना जन्म नहीं लेती वह योगी, ऋषि, संत–महात्मा जहाँ भी विराजमान हो जाते हैं उनकी आत्मा से निकलने वाला दिव्य तेज पुंज वन्य जन्तु जानवरों को भी सुख–शांति का अनुभव कराने वाला होता है। वे संत किसी सूखे वृक्ष के पास भी जाकर बैठ जायें तो संभव है वृक्ष में भी नव कोंपल आ जायें, पुष्प लगें, फल आने लगें।

आपने शास्त्रों में देखा पढ़ा होगा कि किसी अतिशय साधक योगी के आने पर सूखे तालाबों में पानी आ जाना, षट्ऋतु के फल–फूलों का एक साथ आ जाना ऐसा शास्त्रों में वर्णित है। पूज्य आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज का लगभग 1970 के आसपास का चातुर्मास श्रीनगर में था। वहाँ मंदिर में एक वृक्ष था जिस पर फूल–फल नहीं आते थे। आचार्य श्री का चातुर्मास हुआ उस वर्ष उस वृक्ष पर अनेक फूल आये और फल भी आये। चातुर्मास के उपरांत उनका विहार हुआ दो दिन बाद लोगों का आना हुआ कहने लगे महाराज श्री! आपके विहार होते ही उस वृक्ष के सभी पुष्प सूख गये, मुरझा गये। निःसंदेह ये बात सत्य है, योगी की मूक साधना एक इंद्रिय वृक्षों को भी हरित–पल्लवित व फलित कर देती है। पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास कई बार शेर भी आया, सर्प आकर के ऐसे लिपट गया

जैसे चंदन के वृक्ष से लिपट गया हो, जैसे उसे उनके शरीर का स्पर्श पाकर बड़ी शांति ही मिल रही हो।

महानुभाव! उपकार निःसंदेह संसार की एक ऐसी निधि है जो जिस आत्मा में उत्पन्न होती है वह आत्मा तीन लोक के वैभव से सम्पन्न हो जाती है। ज्यों–ज्यों उपकार की निधि प्रकट होती चली जाती है त्यों–त्यों चेतना में दिव्य ज्योति का प्रादुर्भाव होता है। ज्यों–ज्यों चन्द्रमा की कलायें बढ़ती चली जाती हैं त्यों–त्यों उसकी चाँदनी भी बढ़ती चली जाती है। उपकार अंदर में शांति देता है तो बाहर वाले व्यक्ति का हित साधक होता है। उपकार के मायने एक ऐसा कल्पवृक्ष जिसके माध्यम से अनेक व्यक्ति लाभान्वित हों, उपकार एक ऐसे सुख की नींव है जिस पर दीर्घ काल तक टिकने वाली मंजिल को बनाया जा सके, उपकार एक ऐसा बीज है जिसको बोने के बाद उसका फल सुचिरकाल तक अन्य व्यक्ति भी भोगें। एक व्यक्ति ने कार्य किया उसका फल अनेक व्यक्ति भोग रहे हैं प्रत्यक्ष में दिखाई दे रहा है, यह उपकार है स्व का भी और पर का भी।

एक वृद्धा माँ धूप में बैठकर के फावड़े से अपने खेत को जोत भी रही थी और बीज भी डाल रही थी, किसी राहगीर ने पूछा, माँ ये क्या कर रही हो? उसने कहा–बेटा ये कुछ फलों की गुठली व बीज हैं इन्हें बो रही हूँ। राहगीर बोला माँ संभव है जब तक यह वृक्ष बड़े होकर फल दें तब तक आप रह पाओ या न रह पाओ, क्या आपको ऐसी आशा है कि आप 10–20 साल और जीवित रह पायेंगी? वृद्धा माँ बोली बेटा कौन जानता है किसकी आयु कितनी है। तो फिर आप यह मूर्खता क्यों कर रही हैं? इतनी धूप में तो हो सकता है आपका शाम तक जीना ही मुश्किल हो।

बेटा! इसे भी कौन जानता है किन्तु यह कार्य जो मैं कर रही हूँ इसके फल को मैं जानती हूँ। क्या जानती हो माँ? मैं जानती हूँ कि जो बीज आज मैं बो रही हूँ वे कल वृक्ष बनेंगे, उन वृक्षों पर फल भी लगेंगे और फलों को खाने वाले लोग भी आयेंगे। यदि मैं यह सोच लूँगी कि मेरे द्वारा बोये बीज के फल मैं नहीं खाऊँगी तो मैं क्यों बोऊँ, तो बेटा! मुझे आज फल खाने को न मिलते, मेरे पूर्वजों ने जो बीज बोये वे फल मैंने भी तो खाये।

उपकार इस तरह से होता है कि व्यक्ति जब कोई भी कार्य करता है तो अपने उद्देश्य से न करके दूसरे के उद्देश्य का भाव रखता है। निःसंदेह दूसरे के हित में स्वयं का हित छिपा हुआ होता है। जब कहते हैं सबका हित हो तो हम सबसे अलग नहीं हैं। सभी जीव सुखी हों, सबका जीवन मंगलमय हो तो हमारी गिनती भी उसमें आ जाती है। किसी व्यक्ति ने प्याऊ खुदवायी, वृक्ष लगाये, धर्मशाला, भोजनशाला बनवायी, मार्ग बनवाये या और भी सुरक्षा की कोई चीज बनवायी तो वह केवल अकेला ही उसका सेवन नहीं करेगा उसका उद्देश्य सबका हित, सबका कल्याण है। जो सबके कल्याण की भावना भाता है निःसंदेह उसका कल्याण निश्चित होता ही होता है।

जीवन में वस्तुयें भी उपकारक होती हैं। जैन दर्शन कहता है धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश व काल द्रव्य भी उपकारक हैं। धर्म द्रव्य जीव और पुद्गल के चलने में सहकारी होता है, अधर्म द्रव्य जीव–पुद्गल के ठहरने में सहकारी है, आकाश द्रव्य सभी को अवगाहन देता है और काल द्रव्य सभी द्रव्य के परिणमन में सहकारी है। पुद्गल द्रव्य भी जीव का उपकारक है चाहे वह पुद्गल किसी भी रूप में क्यों न हो। आप कहेंगे जो पुद्गल जीव के लिये इष्ट फल देने वाला है जैसे जिस वस्तु से आपको सुख मिला उसे आप उपकारक मानेंगे पर एकान्ततः ऐसा नहीं

है जिस वस्तु के माध्यम से आपको कष्ट मिल रहा है वह वस्तु भी उपकारक है।

सुख–दुःख, जीवन–मरण दोनों ही उपकारक हैं। सुख वर्तमानकाल में आपको सुख की अनुभूति करा रहा है, दुःख भविष्य के लिये सुख का बीज बोने की प्रेरणा देता है। जीवन आज जी रहे हैं, आज सुख का अनुभव कर रहे हैं और मरण अगले भव को संभालने के लिये एक अवसर है। तो ये भी उपकारक है। आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी जी ने लिखा है–

सुहे भाविदं णाणं, दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहा बलं जोई, अप्पा दुक्खं भावए।।

सुख में भावित किया गया ज्ञान दुःख आने पर नष्ट हो जाता है किन्तु दुःख में ग्रहण किया गया ज्ञान दुःख–सुख कुछ भी आये कभी नष्ट नहीं होता है। जिन विद्यार्थियों ने प्रतिकूलता में ज्ञान अर्जन किया है, शिक्षा ग्रहण की है वह ज्ञानधन कभी नष्ट नहीं हुआ और जिन विद्यार्थियों ने विलासी जीवन जीते हुये विद्या को प्राप्त किया है शायद वह विद्या उनके काम न आ सकी। प्रतिकूलता भी अनुकूलता का हेतु होती है। आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने लिखा–

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रजाः,
हेतुस्तत्र विचित्र दुःख निचयः संसार घोरार्णवः।
अत्यन्त स्फुरदुग्र रश्मि निकर व्याकीर्ण भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु पाद सलिल च्छायानुरागं रविः।।

धूप यदि न हो तो व्यक्ति शीतल पदार्थों का सेवन न करे, छाया में न जाये, ऐसे ही जीवन में दुःख न आये तो व्यक्ति प्रभु परमात्मा की भक्ति ही न करे, पुण्य कार्य न करे। जो व्यक्ति पुण्य के उदय में इतराते हैं वे व्यक्ति पाप के उदय में भगवान्

के चरणों में पहुँच जाते हैं। दुःख ऐसा है जो अपनों और परायों का ज्ञान कराता है, दुःख एक ऐसा साधन है जिससे प्रभु परमात्मा की सत्ता और अस्तित्व पर विश्वास हो जाता है। जब दुःख नहीं था, पैसा था, सत्ता थी, यौवन था, अधिकार थे, सब कुछ था तब कहता था कौन सा भगवान् कैसा भगवान्? कौन धर्मात्मा, कौन साधु संन्यासी? किन्तु जब जीवन में दुःख का पहाड़ टूट पड़ा तब उसे एक सामान्य व्यक्ति भी भगवान् जैसा लगता है फिर तो उसे पत्थर भी भगवान् लगता है।

वक्त उन व्यक्तियों की बुद्धि को भी ठीक कर देता है जो बुद्धि को अपना गुलाम मानते हैं, वक्त उनकी बुद्धि भी ठीक कर देता है जो अपने आप को असहाय–दीन–निर्बल मानते थे, वक्त उनको भी ठीक कर देता है जो श्याम रंग से रंगे पड़े हैं वक्त की अग्नि उन्हें जलाकर के श्वेत कर देती है उनमें धवलता आ जाती है। कभी ऐसा भी होता है कि वक्त की लपटें जलकर श्वेत को भी श्याम कर देती हैं।

उपकार करने वाला जब सभी के अच्छे की भावना भाता है तो दूसरों की सद्भावनायें उसका उपकार करती हैं। सेवक–मालिक का उपकार कर रहा है तो मालिक भी सेवक का उपकार कर रहा है। किसी मालिक ने अपनी सेवा में किसी सेवक को रखा, सेवक कह रहा है–मैं आपका धन्यवाद, कृतज्ञता किन शब्दों में ज्ञापित करूँ मैं तो एक अनाथ जैसा था आपने अपने चरणों में सेवा देकर मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। मालिक कहता है मैंने तेरा उपकार नहीं किया तूने भी मेरा उपकार किया है तू न होता तो शायद आज मैं भी नहीं होता। एक शिष्य गुरु से कहता है गुरुजी! आपने शिक्षा देकर मेरा बड़ा उपकार किया है, गुरु कहता है शिष्य तेरे कारण मैंने इतनी खोज की, तेरे आने के उपरान्त तेरी नयी–नयी जिज्ञासाओं ने मुझे ज्ञान के नये–नये

रास्ते दिखाये। एक माली वृक्ष का उपकार करता है तो वृक्ष माली का उपकार करता है। उपकार के बिना संसार में कुछ भी चलता ही नहीं। जैसे एक पैर से मनुष्य नहीं चल सकता वैसे ही एक–दूसरे के उपकार के बिना यह संसार का जीवन चलता ही नहीं है। आचार्य भगवन् श्री उमास्वामी मुनिराज ने तत्त्वार्थ सूत्र में एक वैज्ञानिक सूत्र कहा है–''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'' प्रत्येक जीव एक दूसरे का उपकार करता है। एक दूसरे का उपकार करना, सहायता करना मानवीय धर्म है। अन्य दानादि कार्य तो बहिरंग मात्र हैं। परस्पर उपकार, सेवादि की भावना प्रथमतः प्राणी के अंदर होनी चाहिए। ''प्राणी मात्र का कल्याण हो,'' इस संक्लेशतम दया भाव के कारण तीर्थंकर जैसी सर्वश्रेष्ठ प्रकृति का भी बंध होता है। पूजा के पश्चात् आप सभी लोग भगवान् के समक्ष भावना भाते हैं–

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।

हे भगवन्! हमने जो पूजा–अर्चना की है वह मात्र अपनी शांति के लिए नहीं है अपितु पूजक, प्रतिपालक (राजा आदि), यतीन्द्र सामान्य साधु, देश, राष्ट्र, समस्त नागरिक व प्राणीमात्र को शांति प्राप्त हो, उनका मंगल हो, कल्याण हो, सुख–शांति की प्राप्ति हो ऐसी भावना को लिए है। कितनी श्रेष्ठ भावना है।

जब एक व्यक्ति की सेवा से जीव पुण्य का अर्जन कर लेते हैं तब प्राणी मात्र के प्रति ऐसी भावना भाने वाले के पुण्य के विषय में क्या कहा जा सकता है?

उपकार केवल वस्तु प्रदान कर ही नहीं किया जाता। आपकी सांत्वना के प्रेमपूर्ण शब्द भी समाने वाले व्यक्ति का उपकार कर सकते हैं उसे आत्मघातादि जैसे महान् पापों से बचा सकते हैं।

एक बार एक नगर में बहुत दीन दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसके पत्नी व छोटे–छोटे दो बच्चे अत्यंत दयनीय स्थिति में थे। कभी तो कुछ अन्न मिल जाता, कभी पानी पीकर ही सोना पड़ता। वह ब्राह्मण घर की इस स्थिति को देखकर बहुत परेशान था। बच्चों को रोते तड़पते हुए देखकर स्त्री ने कहा कि बाहर जाकर कुछ खाने–पीने की व्यवस्था करो। वह ब्राह्मण बाहर गया, बहुत से लोगों के पास जाकर भोजन की याचना की, किन्तु वह प्राप्त नहीं कर सका। वह निराश होकर अपनी झोपड़ी की ओर चल दिया। जैसे ही वह अपनी झोपड़ी के पास पहुँचा उसने सुना कि उसकी पत्नी बच्चों को उसके आने तक के लिए धैर्य बंधा रही है। यह देखकर उस ब्राह्मण का साहस अंदर जाने का नहीं हुआ और इस तरह के जीवन से तो मृत्यु अच्छी है ऐसा विचार करता हुआ वह नदी की ओर चल दिया। वह सोचता हुआ किसी खेत के निकट बैठा। वहाँ उस खेत के स्वामी ने प्रातःकालीन बेला में ब्राह्मण को देखकर विचार किया कि इन्हें कुछ देना चाहिए। उसने तीन मकई उस ब्राह्मण को दे दी। मकई मिलने पर उस ब्राह्मण ने आत्मघात का विचार त्याग दिया। उसने सोचा यदि ये मकई मैं राजा को भेंट करूँ तो इसके बदले राजा से कुछ अवश्य प्राप्त होगा। वह ब्राह्मण एक पोटली में उन तीन मकई को बांधकर पेड़ पर लटका कर नदी में नहाने चला गया। पीछे से कुछ शैतान बच्चों ने उसमें से मकई निकाल ली और तीन अधजली लकड़ी रख दी। ब्राह्मण स्नान कर लौटकर आया पोटली उठाई और राजदरबार की ओर चल दिया। सभा में पहुँचकर उसने राजा भोज को प्रणाम किया और भेंट देने के लिए जैसे ही पोटली खोली उसमें तीन अधजली लकड़ियाँ निकली। यह देखकर राजा बहुत क्रोधित हुआ। राजा को क्रुद्ध देखकर ब्राह्मण डर गया। अन्य दरबारी भी उसे दंड दिलाने को

उद्यत हुए। यह देखकर कालिदास को उस पर दया आयी। तब कालिदास ने राजा से कहा ''हे राजन्! यह ब्राह्मण जो अधजली लकड़ियाँ लाया है ये बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें एक बहुत महत्वपूर्ण संदेश है। राजा भोज जो ज्ञान के प्रति विनयवान्, जिज्ञासु था उन्होंने कहा–यदि ऐसा है तो बताइये, ये क्या ज्ञान गर्भित किए हुए है।

वह बोला–ये कह रही है कि दुनिया में तीन महापुरुष ऐसे हैं जिन्होंने बुराई जलाकर नष्ट कर दी। पहले आदिनाथ भगवान् जिन्होंने सर्व कर्म जलाकर नष्ट कर दिया। दूसरे श्री शैल हनुमान जिन्होंने मान की प्रतीक सोने की लंका जलाकर नष्ट कर दी और तीसरा अर्जुन जिसने खांडव वन जलाकर नष्ट कर दिया। किन्तु दरिद्रता को आज तक कोई नहीं नष्ट कर पाया। यह सब सुनकर राजा भोज विचार करने लगा कि पूरी दुनिया की दरिद्रता तो मैं दूर नहीं कर सकता किन्तु हाँ इस व्यक्ति की दरिद्रता तो दूर कर ही सकता हूँ और राजा ने उस ब्राह्मण को धन–वैभवादि से परिपूर्ण कर दिया।

कालिदास ने इस ब्राह्मण को कोई वस्तु तो प्रदान नहीं की किन्तु अपने ज्ञान के माध्यम से उसे राजदंड से बचा लिया। इसलिए कहा कि उपकार मात्र वस्तुओं के माध्यम से नहीं अपितु काय के माध्यम से सेवा आदि करके वा वचनों के माध्यम से सान्त्वना, ज्ञानादि देकर भी किया जाता है। धर्म सीमित नहीं विशाल है। यह निज कल्याण के साथ पर कल्याण की भी प्रेरणा देता है।

महानुभाव! इस जीवन रूपी रथ के दो चक्र हैं एक का नाम है स्वउपकार, दूसरे का नाम है पर उपकार। परोपकार करने वाला कैसे स्व उपकार को प्राप्त करता है–एक बार एक बालक

जो अपने माता–पिता के बिना अनाथ जीवन जीने वाला था। मार्ग में अपने भाग्य की परीक्षा लेने के लिये चला जा रहा था उसे कहीं से ज्ञात हुआ कि एक संत महात्मा पास के जंगल में विराजमान हैं वह उनके पास जा रहा था। मार्ग में एक स्थान पर ठहरा, वह घर बहुत आलीशान था उसमें एक माँ व उसकी बेटी रहती थी। बेटी बोलने में असमर्थ थी, यौवन से युक्त थी, माँ ने पूछा बेटा कहाँ जा रहे हो? बेटे ने सारी आप बीती सुना दी, माँ ने कहा–बेटा तो ठीक है। तुम उन महात्मा जी से मेरी बेटी के विषय में भी पूछकर आना कि मेरी पुत्री कब बोलेगी? कब इसका विवाह सम्पन्न होगा व किससे साथ होगा?

वह बालक आगे बढ़ता है, मार्ग में उसे एक उद्योगपति मिलता है। उसने भी वही प्रश्न किया बेटे कहाँ जा रहे हो? बेटे ने सारी बात कही, तो उद्योगपति ने भी कहा बेटा! एक प्रश्न मेरा भी उन महात्मा जी से पूछ आना, मुझे मेरे व्यापार में बार–बार घाटा क्यों लग रहा है? मैं जो वस्तु निर्माण करता हूँ वह सही क्यों नहीं बन पा रही, तुम पूछकर बताओगे तो बड़ा ही उपकार होगा तुम्हारा। बेटे ने कहा आपका बहुत–बहुत उपकार जो आपने मुझ राहगीर को भोजन कराया और धन्यवाद करते हुये आगे बढ़ गया। चलते–चलते बहुत समय हो गया, रात्रि में वह एक बाग में ठहरा, वहाँ के माली ने भी वही प्रश्न किया और पुनः उससे कहा–मैं यहाँ पर बीज बोता हूँ किन्तु वृक्ष उत्पन्न ही नहीं होता आखिर क्या बात है? तुम उन महात्मा के पास जा रहे हो तो मेरा प्रश्न भी पूछ लेना। बेटे ने कहा ठीक है पूछ आऊँगा। आगे चला तो एक संत महात्मा से मिला, उन्होंने कहा–बेटा तुम जहाँ जा रहे हो, वहाँ एक प्रश्न मेरा भी पूछ आना कि मैं इतनी साधना करता हूँ, तप करता हूँ किन्तु फिर भी मुझे सिद्धि की प्राप्ति क्यों नहीं हो रही।

वह बालक वहाँ से चला और पहुँच गया संत महात्मा के पास। उसके मन में मार्ग में मिले चारों लोगों के प्रश्न थे। उसने महात्मा के चरण स्पर्श किये और वहाँ बैठा, महात्मा ने कहा पूछो वत्स क्या पूछना चाहते हो? किन्तु केवल चार बातें ही पूछ सकते हो। उसने मार्ग के चारों प्रश्न पूछ लिये, महात्मा जी ने चारों ही प्रश्न के उत्तर दे दिये। पुनः वह बालक बोला महात्मा जी! एक पाँचवा प्रश्न और पूछना चाहता हूँ। महात्मा जी बोले नहीं चार प्रश्न से ज्यादा नहीं पूछ सकते। वह बालक कुछ नहीं बोला, ठीक है कहकर चारों उत्तरों को लेकर वहाँ से चल दिया।

चलते समय मार्ग में सर्वप्रथम उसे वे महात्मा मिले जिन्होंने पूछा था कि मुझे सिद्धी क्यों नहीं हो रही? बालक ने उन्हें कारण बताया कि आपके मन में पाप है, आपने शुद्ध आलोचना नहीं की, आप शुद्ध आलोचना करें तो कार्य सिद्ध होगा। पुनः मार्ग में माली मिला, उसने कहा क्या आपने मेरा प्रश्न पूछा, वह बोला हाँ, बात यह है कि आप जहाँ बीज बोते हैं वहाँ जमीन पर एक चट्टान गढ़ी है वह हीरे की चट्टान है, उसमें हीरा जड़ित है। उस कंकड़–पत्थर के बीच से उस पत्थर की चट्टान को तोड़ा जाये, पुनः नीचे मिट्टी है वहाँ बीज बोया जाये तो वृक्ष उत्पन्न हो सकते हैं। आगे चलकर उसे उद्योगपति मिला, तो उसके प्रश्न का उत्तर था कि उसने बोला हुआ दान अभी तक नहीं दिया है इसीलिये व्यापार में बार–बार घाटा हो रहा है। पुनः आगे चलकर माँ–बेटी का घर मिला–उन्हें बताया कि वह बेटी जब अपने जन्म का हाल जान जायेगी तो पुनः बोल उठेगी। माँ ने पूछा यह जन्म का हाल कैसे मालूम चलेगा? बालक बोला मार्ग में एक महात्मा मिले थे वह महात्मा जो कुछ भी बतायेंगे उससे उस बेटी के भाग्य का सितारा स्वयं चमक जायेगा।

मार्ग में जब महात्मा मिले थे, उन्हें उनका उत्तर दिया तो महात्मा बोले हाँ पुत्र! मेरे मन में एक विकल्प तो है, जिसकी मैंने शुद्ध आलोचना नहीं की, मैंने एक युवती को मार दिया था, उसके गहने छीन लिये थे, मैंने परमात्मा के समक्ष अपना दोष कबूल नहीं किया और वे गहने यहाँ गढ़े हुये हैं। मैं आज परमात्मा के सामने अपने दोष स्वीकार करता हूँ और गहने निकालकर उस बालक को दे दिये। बालक गहने लेकर आगे बढ़ा तो बाग के माली को जब बात बतायी तो माली ने कहा खुदाई के लिये तो मेरे पास पैसा नहीं है, बालक ने उन्हें वे कुछ गहने दे दिये व चट्टान खोदी, चट्टान में से हीरा निकला, वह माली कुछ हीरे उस बालक को दे देता है।

उद्योगपति को जब उसका कारण बताया तो उद्योगपति ने कहा आप सत्य कह रहे हो किन्तु अब मैं अपना बोला धन देने कहाँ जाऊँ, और वह धन उस बालक को दे दिया। अब वह बालक जब माँ–पुत्री के पास पहुँचा उन्हें बताया कि आपकी बेटी नहीं बोलती, इसका कारण है–और ऐसा कहकर बालक ने महात्मा के दिये सारे गहने उसके सामने रख दिये, बेटी ने जैसे ही आभूषण देखे बोल उठी माँ यह तो मेरे आभूषण हैं, बेटी की आवाज आ गयी और उसे पूर्वभव का स्मरण हो आया। माँ ने खुश होकर अपनी पुत्री का विवाह उस बालक के साथ कर दिया, उसे सब वैभव प्राप्त हुआ।

वह बालक जो पूछने तो गया था कि मेरा भाग्य कब खुलेगा, कब सितारा चमकेगा? मैं क्या करूँ? मैंने इस भव में तो कोई पाप नहीं किया, मेरे माँ–बाप बड़े अच्छे थे किन्तु मैं अनाथ बनकर रह रहा हूँ, उसने चार व्यक्तियों के उपकार करने की भावना से अपना प्रश्न नहीं पूछा, इसके बावजूद भी उसे सब कुछ प्राप्त हुआ। महानुभाव! कहने का अभिप्राय यह है कि जब व्यक्ति

शुद्ध मन से कोई कार्य करता है, उपकार की भावना भाता है तो ये बात नोट कर लेना कि तुम्हारे द्वारा किया गया कोई भी कृत्य तुम्हें फल दिये बिना छूटेगा नहीं, अच्छा करोगे तो अच्छे का फल अच्छा नियम से मिलेगा। जब तक तुम्हें अच्छे कृत्य का फल नहीं मिला है तब तक समझो कहानी पूरी नहीं हुई और जब तक बुरे कृत्य का फल बुरा नहीं मिला तब भी समझो कहानी पूरी नहीं हुयी। अच्छे का अच्छा–बुरे का बुरा फल मिलेगा ही मिलेगा।

आप सभी जीवन में उपकार करने का संकल्प लें। दूसरों का उपकार करने से स्वयं का उपकार हो ही जाता है। यह उपकार मानवधर्म है, मानवता का कल्याण करने वाला है आप सभी मानवता की समृद्धि और हित में कार्य करें ऐसी हम भावना भाते हैं। इसी के साथ शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘जीवन संतुलन की तराजू’

महानुभाव! एक व्यापारी अपने व्यापार का लेखा–जोखा करता है, वर्ष के अन्त में उसका चिट्ठा बनाता है। वह बेलेंसशीट बनाने से पहले profit & loss account बनाता है, उसके पहले ट्रेडिंग अकाउण्ट बनाता है। यदि ट्रेडिंग अकाउण्ट ठीक नहीं होगा तो P&L account भी ठीक नहीं होगा और balance sheet भी ठीक नहीं होगी। balance sheet मिल गयी तो समझो सब ठीक है। balance sheet बनाने के लिये ही ट्रेडिंग अकाउण्ट व P&L account बनाने पड़ते हैं। trading account से यह ज्ञात हो जाता है कि gross profit है या gross loss तथा P&L से यह निश्चित हो जाता है कि मुझे Net profit कितना हुआ या Net loss कितना हुआ? कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि Gross profit कुछ दिखाई देता है बाद में Net loss कुछ दिखाई देता है और कई बार ऐसा दिखाई देता है कि Gross loss दिखाई दे रहा हो और बाद में Net profit निकलकर आ जाये। इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता है कि Gross loss आ जाये या Gross profit, Net loss आ जाये या Net profit किन्तु हाँ यदि Balance sheet गड़बड़ है तो चाहे P&L account और trading account कैसे भी हों वह सही नहीं माने जा सकते। Balance sheet को पूर्ण करने के लिये वह अपने trading व P&L account को पूरा देखता है, Assets और liabilities को देखता है। वह संतुलित हैं, उसमें कहीं गड़बड़ नहीं है तो उसका व्यापार ठीक है। वह अपने व्यापार को नियंत्रित कर सकता है यदि loss भी हो रहा हो तो भी नियंत्रित कर सकता है, profit हो रहा हो तो उसे और भी बढ़ा सकता है। जैसे बैलेंसशीट के माध्यम से व्यापार को Balance किया जाता है, पूरे व्यापार की बातें authentic की जाती है उसी प्रकार जीवन

के बारे में भी समत्वभाव के बिना कोई बात प्रमाणिक नहीं की जा सकती है।

जीवन को संतुलित करने की तराजू है साक्षीभाव–समत्वभाव। जब जीवन में साक्षी भाव आता है, समत्व भाव आता है तो राग–द्वेष मंद अवस्था को प्राप्त होते हैं, व्यक्ति अनासक्त हो जाता है, व्यक्ति मूर्च्छा से परे हो जाता है, वह बाह्य पदार्थों में लीन नहीं होता है। जो लीन होता है वह संसार में विलीन हो जाता है और जो आत्मा में लीन होता है तो वह आत्मा में ही रम जाता है, उसके कर्म विलीन हो जाते हैं, वह आत्मा परमात्मा बन जाती है। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी जी ने लिखा है–

पश्य आत्मसदृशं विश्वं जीव–लोक–चराचरं।

लोक के जो चराचर जीव हैं उन सभी जीवों को आत्मा के समान ही देखने का सामर्थ्य प्राप्त हो गया फिर तुझसे पाप नहीं हो सकेगा। जब तक आपकी दृष्टि में आत्मा में और दूसरे जीव में भेद पड़ रहा है तब तक तुम पाप कर सकते हो, तब तक तुम किसी को वरदान देने के लिये तैयार हो जाओगे तो किसी को अभिशाप देने के लिये। उस समय वरदान देने में भी आपको देर न लगेगी और अभिशाप देने में भी देर न लगेगी किन्तु जिस समय अपनी आत्मा के समान दूसरी आत्मा को भी समझेगा तो फिर न वरदान न अभिशाप, क्या वरदान और क्या अभिशाप। वह समझेगा कि सब आत्मा एक बराबर हैं उसे किसको देना, किससे लेना। प्रत्येक आत्मा के साथ बंधा हुआ कर्म उसे उसका फल देने वाला हैं। मैं अपनी आत्मा में लीन हो जाऊँ बस यही मेरा लोक के प्रति उपकार पर्याप्त है।

वैदिक परम्परा के शास्त्रों में भी लिखा है ''आत्मवत् सर्व भूतेषु'' सभी जीवों में आत्मवत् हो अपनी आत्मा की शक्ति को

देखो। **'अप्पा सो परमप्पा'** प्रत्येक आत्मा को परमात्मा देखो। आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती जी ने लिखा है कि शक्ति की अपेक्षा से सभी जीव सिद्ध भगवान् हैं। **''सव्वे सुद्धा हु सुद्ध णया''** शुद्ध नय से सभी जीव शुद्ध हैं, परमात्मा हैं, किसी को कम मत आँकों। व्यक्ति जब किसी को उत्कृष्ट मान लेता है तो उसके मन में स्वयं के प्रति हीन भावना आ सकती है, जब किसी को लघु मान लेता है तब निःसंदेह अपने अहंकार का पोषण कर रहा होता है। अहंकार का पोषण करने के लिये वह सामने वाले पदार्थों में कोई न कोई कमी खोजता है। दूसरे की गलती दिख रही है तो समझना चाहिये यह सब अहंकार का पोषण है अभी उसे अहंकार में रस आ रहा है, आनंद आ रहा है। और जब उसे सामने वाले का कुछ नहीं दिख रहा न अच्छाई न बुराई तो संभव है वह साक्षी भाव में बैठ गया, वह आत्मा में लीन होने का स्वप्न साकार कर सकता है।

नदी किनारे बैठा हुआ व्यक्ति यदि नदी में बहती वस्तु को पकड़ने के लिये दौड़ रहा है तो रागी है, उसे देखकर के नाक बंद कर लेता है मुँह फेर लेता है तो द्वेषी है। तटस्थ उसे कहते हैं जो तट की तरह स्थित रहे चाहे अमृत बहकर जाये या जहर। तट कभी अमृत को गले लगाने के लिये और जहर को धक्का मारने के लिये अपने स्थान को छोड़कर नहीं आते। जो व्यक्ति संसार की किसी भी अनुकूलता–प्रतिकूलता के प्रति एक जैसा भाव रखने में समर्थ है वही वास्तव में उत्कृष्ट संत है, तपस्वी है, महात्मा है।

विश्व के सब प्राणियों को स्व समान देखने की दृष्टि ही समत्व रूप धर्म है। जब एक माँ अपनी दो संतानों को समान भाव से देखती है तो सद्धर्मी में यह गुण कैसे नहीं होगा, वह सभी को समान भाव, समता भाव से अवश्य देखेगा। जिस प्रकार

वात्सल्यपूर्ण व्यवहार माँ अपने पुत्र के साथ करती है उसी प्रकार का व्यवहार दूसरे के संतानों के प्रति रहे, अपने समान ही दूसरे प्राणियों को समझे, समन्वयता और सामंजस्यता से जीए, वह समताभावी है। समताभावी की दृष्टि विशाल होती है, उसका हृदय उदार और जीवन आदर्श होता है। गृहस्थ हो या साधु किन्तु समता तो सभी के लिए आवश्यक है। समताभावी के जीवन में द्वंद, झगड़ा, कलह आदि नहीं होती।

किसी नगर में एक युवक था। वह युवक मंद कषायी था। उसके अंतरंग में द्वन्द था कि वह गृहस्थ धर्म का पालन करे या साधु बने। लोगों ने सलाह दी कि नगर में एक बहुत सज्जन, श्रेष्ठ एवं साधु प्रवृत्ति का व्यक्ति रहता है, आप उससे सलाह लें। वह युवक त्वरित गति से उस व्यक्ति के पास पहुँचा और अभिवादन आदि करके अपने अंदर चल रहे द्वंद को उस व्यक्ति के सामने प्रकट किया। युवक का प्रश्न सुनकर वह गंभीरतापूर्वक बोला कि इसका उत्तर मैं आपको कल दूँगा। आप कल प्रातःकाल यहाँ आ जाइयेगा। युवक के मन में रात भर द्वंद चलता रहा, वह रात्रि भी उसकी कठिनता से व्यतीत हुई। प्रातःकाल होते ही युवक उस व्यक्ति के पास पहुँचा। बिना कुछ बोले ही उस व्यक्ति ने युवक को एक पहाड़ी की ओर चलने का इशारा किया। युवक भी उत्तर पाने के उत्साह के साथ उस व्यक्ति के साथ चल पड़ा। वे दोनों कुछ ही देर में वहाँ पहुँच गए। गर्मियों का समय था, ज्येष्ठ मास की सुबह 8:00 बजे ही मानो सूरज सिर पर आ गया था। दोनों को प्यास सताने लगी। व्यक्ति ने युवक से कहा इतनी गर्मी में पहाड़ी चढ़ने की हिम्मत नहीं है किन्तु इस पहाड़ी पर एक महात्मा हैं उनके दर्शन कर ही मैं उत्तर दे सकूँगा। युवक का भी साहस इतनी गर्मी में पहाड़ी चढ़ने का नहीं था।

तभी उस व्यक्ति ने ज़ोर से आवाज़ लगाई महात्मा जी, महात्मा जी। महात्मा जी ने आवाज़ सुनकर पूछा–हाँ भाई! कौन है, क्या चाहिए? व्यक्ति ने कहा, महात्मा जी! हम लोगों को आपके दर्शन करने हैं और ऊपर आने की हिम्मत नहीं है। आप ही एक बार नीचे आ जाइये ना। महात्मा जी उनकी पुकार सुन सहज भाव से पहाड़ी उतरकर नीचे आ गए। दोनों ने दर्शन किए। अब महात्मा जी पुनः ऊपर अपने स्थान पर चले गए। युवक खुश था कि अब उसे उसके प्रश्न का उत्तर मिल जाएगा। किन्तु यह क्या, महात्मा जी ऊपर पहुँचे ही थे कि व्यक्ति ने पुनः ज़ोर से आवाज़ लगायी–महात्मा जी! आपके दर्शन कर मेरा मन तृप्त नहीं हुआ, एक बार और मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ। यह देखकर युवक हैरान रह गया कि ये व्यक्ति इतनी तीव्र गर्मी में स्वयं तो ऊपर जाने का साहस नहीं कर पा रहा और महात्मा जी को नीचे बुला रहा है।

कुछ ही देर में महात्मा जी नीचे आए, कुछ देर बैठे व पुनः ऊपर चले गए। वे ऊपर पहुँचे ही थे कि व्यक्ति ने पुनः कहा–महात्मा जी! क्षमा करना किन्तु मैं आपके चरण स्पर्श नहीं कर पाया, एक बार आ जाइये ना। अब तो युवक को और तीव्र क्रोध आया। ''अरे! ये व्यक्ति महात्मा को इतना कष्ट दे रहा है और लोगों ने इसे श्रेष्ठ व सज्जन व्यक्ति कहा। अभी मैं इसे कुछ कह नहीं सकता किन्तु लौटकर सबके समक्ष इसका सत्य उजागर करूँगा।'' इधर महात्मा जी नीचे आए, उस व्यक्ति ने चरण स्पर्श किए व महात्मा जी आशीर्वाद देकर लौट गए।

युवक ने कहा–अब तो मेरा उत्तर दीजिए। अब तो आप महात्मा जी के मन भकर दर्शन कर चुके हैं। युवक की बात सुनकर व्यक्ति मौनपूर्वक चलता रहा एवं अपने घर के बगीचे में जाकर बैठ गया, युवा भी वहाँ बैठा था किन्तु अंदर ही अंदर कुछ

क्रोधित था। युवा कुछ सोच रहा था किन्तु उसकी सोच तब टूटी जब उसने उस व्यक्ति की आवाज़ सुनी ''अरे सुनती हो जरा लालटेन तो जलाकर लाना।'' युवक और अधिक विस्मित हुआ कि इतना तीव्र सूर्य का प्रकाश होने के बाद भी वह लालटेन मँगा रहा है। इधर पत्नी आई और लालटेन जलाकर रख गई। युवक ने सोचा कि मैं तो सोच रहा था कि ये व्यक्ति ही सनकी है किन्तु इसकी तो पत्नी भी बुद्धिहीन है। अरे! इसने लालटेन मँगायी सो मँगायी लेकिन इतनी धूप में वह क्यों रख गई।

युवक ने उस व्यक्ति से थोड़े उच्च स्वर में कहा–बस! आप मुझे मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए, मैं यहाँ अधिक समय रुकना नहीं चाहता। इतने में ही उस व्यक्ति की पत्नी दोनों के लिए दूध लेकर आयी। युवा ने सोचा चलो ये तो ठीक है, इन्हें ज्ञात है कि घर आए अतिथि का सत्कार कैसे किया जाता है। दोनों ने अपने–अपने ग्लास उठाए। व्यक्ति एक ही श्वांस ही दूध को पी गया किन्तु उस युवक ने जैसे ही एक घूंट पिया उसने तुरंत कुल्ला कर दिया। कारण यह था कि दूध में गलती से मीठे की जगह नमक डल गया था। युवक गुस्से में खड़ा हुआ और आँखें लाल करता हुआ बोला–बस! बहुत हो गया, यदि आपको मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देना था तो पहले बता देते, पता नहीं मैं यहाँ कहाँ से आ गया। मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकता।

व्यक्ति ने युवक से कहा, ''किन्तु मैं तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे चुका हूँ। युवक चौंककर बोला, कब? व्यक्ति बोला–देखो! प्रातःकाल हम महत्मा जी के पास गए थे। मेरे कहने पर वे इतनी गर्मी में तीन बार पहाड़ से नीचे आए, उनके चेहरे पर थोड़ा भी क्रोध नहीं था। मैं ये कहना चाहता हूँ कि साधु बनो तो ऐसे बनना कि हर परिस्थिति में समता भाव धारण कर सको। और यहाँ घर पर आए तो तुमने देखा मैंने अपनी पत्नी से लालटेन मँगाया, यह

जानते हुए भी कि सूर्य के प्रकाश में इसकी आवश्यकता नहीं उसने मुझसे कोई प्रश्नादि किए बिना वह लालटेन लाकर मुझे दे दिया और मैं भी उसके द्वारा गलती से दूध में नमक डल जाने पर क्रोधित नहीं हुआ, ना ही कुछ कहा अपितु सहज भाव से पी लिया। उत्तर यही है कि यदि विवाह करो तो ऐसे गृहस्थ बनना जहाँ आपस में सामंजस्यता, प्रेम व समत्व भाव धारण कर सको।

अर्थात् कोई भी परिस्थिति हो समता भाव के साथ उसे सहन करना, कोई भी प्रतिकूलता हो उसमे समता भाव रखना। जिस प्रकार तटस्थ नदी मर्यादित होती है व गन्तव्य तक पहुँच जाती है उसी प्रकार तटस्थ समत्व भाव सहित जीवन भी श्रेष्ठ होता है तथा वह जीव अपने समीचीन लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

समता के संबंध में आचार्यों ने लिखा है–

जीवे मरणे लाहालाहे संजोग विप्पजोगे य।
बंधुरिह सुहदुक्खादो समदा सामायियं णाम।।

जीवन में, मरण में लाभ में, अलाभ में, संयोग–वियोग में, बुंध–मित्र में, सुख–दुःख में समता रखना ही सामायिक है। कोई कहे तुम्हारी मृत्यु अभी होने वाली है, कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई कहे तुम सौ साल जीओगे तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। आप पढ़ते हैं मेरी भावना में–

'अनेक वर्षों तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे' समत्व का भाव जिसमें पैदा हो गया है उसका ही यह भाव होता है। अपनी आत्मा में झाँककर देखो यदि कोई हमसे कहे कि आपकी मृत्यु 1 घंटे में होने वाली है, तब हमारी आत्मा का परिणमन क्या होता है और कोई कहे अभी आपको 80 साल और जीना है तब हमारी आत्मा का परिणमन क्या होता है। जब दोनों

स्थिति में आत्मा का परिणमन एक है तो वास्तव में आपके चित्त में समत्व भाव है।

'लाहालाहे' कोई कहे मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, करोड़ों रूपयों का दान देना चाहता हूँ, आप जहाँ कहें वहाँ दे सकता हूँ। पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के पास एक बहुत बड़ा उद्योगपति आया, उसने आचार्य श्री की तपस्या साधना के बारे में बहुत सुन रखा था। उसने आकर के पगड़ी उतार कर उनके चरणों में रख दी और भक्ति वंदना कर कहने लगा महाराज! मैं आपके दर्शन करके धन्य–धन्य हो गया, महाराज शांति से बैठे रहे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, उसने पुनः कहा महाराज मैं एक बहुत बड़ा उद्योगपति हूँ आपके चरणों में अमुकराशि दान करना चाहता हूँ। आप कहें तो स्कूल बनवा दूँ, धर्मशाला बनवा दूँ, जो कुछ भी आप कहें वहीं कर दूगाँ बस आप तो आदेश करें। महाराज श्री फिर भी शांत रहे, उसने पुनः पूछा तो महाराज ने कहा भैया! जब तूने पैसा कमाया था तब मुझसे पूछने आया था क्या? बोला नहीं। तो तेरे पास जब पैसे कमाने की बुद्धि है तो खर्च करने की बुद्धि भी तेरे पास है तुझे कहाँ लगाना है स्वयं निर्णय कर। अगर तेरा पैसा पुण्य द्वारा कमाया गया होगा तो पुण्य में लग जायेगा, पाप से कमाया गया होगा तो पाप में लग जायेगा। मेरे कहने से कुछ होने वाला नहीं। तेरा धन, जो चाहे सो कर।

एक बार एक व्यक्ति आया और आचार्य श्री के समक्ष अभद्र वचनों को बोलने लगा, आचार्य श्री शांति से बैठे रहे। श्रावकों को आक्रोश आया, वे कुछ कहते इससे पहले ही आचार्य श्री बोले ठहरो! सूर्य आता है, सुबह उदित होता है, शाम को ढल जाता है, सूर्य अपनी गति से जा रहा है, बताओ सूर्य की धूप अच्छी होती है या बुरी होती है? वे बोले–आचार्य श्री यह कैसे कहें कि सूर्य

की धूप अच्छी होती है या बुरी। आचार्य श्री बोले क्यों नहीं कह सकते हैं। उसे अच्छी भी कह सकते हैं बुरी भी कह सकते हैं। जो व्यक्ति सर्दी में ठिठुर रहा है वह कहेगा सूर्य की धूप अच्छी होती है और जो गर्मी में तप रहा है वह कहेगा बुरी होती है। तो जब तक यह अच्छे–बुरे का भेद मन में रहेगा तब तक साधना का प्रारंभ नहीं होता। सूर्य वही है, दृष्टि का फेर है, कोई अच्छा मानता है कोई बुरा। अतः लाभ–अलाभ में समता भाव रखना।

'संजोगे–विप्पजोगे य' यदि सुखद संयोग प्राप्त हो जाये तो मन में हर्ष भाव नहीं और वियोग हो गया तो द्वेष भाव नहीं। अनिष्ट का वियोग हो गया तो हर्ष भाव नहीं, इष्ट का संयोग हो गया तो हर्ष नहीं, अनिष्ट का संयोग हो गया तो दुःख नहीं और अनिष्ट का वियोग हो गया तो भी खुशी नहीं, दोनों क्षणों में समता भाव रखना। **'बंधुरिह सुह दुक्खादो'** चाहे बंधु वर्ग आ गया तो चेहरे पर मुस्कुराहट नहीं, शत्रु आ गया तो आँखों में लालिमा नहीं। किसी अपने सगे संबंधी को देखकर चेहरा खिले नहीं, चमक नहीं आए और शत्रु जब तलवार लेकर मारने ही आ गया तो भी उसे देखकर रूह नहीं काँपें यह कहलाती है समता। चाहे दुःखों का पहाड़ टूट पड़े और चाहे सुखों का झरना फूट पड़े तब भी कोई अंतर नहीं पड़ा ज्यों की त्यों चित्त का स्थिर बने रहना समत्व भाव है। आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी जी ने कहा यही धर्म है, यही धर्म का मूल है। यही परमधर्म, निश्चयधर्म, आत्मा की नियती है, यही चारित्र है

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोह–विहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो।।7।।

आत्मा का समतामय परिणाम जो मोह और क्षोभ से रहित है वही परिणाम धर्म है और वही धर्म चारित्र है, वह चारित्र ही

निश्चय से धर्म है। समत्वभाव में रहना निश्चय चारित्र है। हमारा लक्ष्य समत्व है। अपना लक्ष्य बनाकर रखो, धीरे–धीरे ही सही वहाँ तक पहुँचो। यह समत्व भाव यूँ कहिये कि आत्मा की शुद्ध परिणति है, परमात्मा बनने की तुरंत पहले की पर्याय है। इसके उपरांत तुरंत परमात्मा की पर्याय प्रकट होगी। प्रभु वह है जिसमें प्रभुत्व हो, सत् से युक्त ही जीव होता है। जिसमें सतपना है, जीवत्वपना है वह जीव है, ममत्व से युक्त माँ है, ज्ञानी वह है जिसमें ज्ञत्व है, तत्त्ववेत्ता वह है जो तत्त्व को जानता है। समत्व के बिना स्वत्व की प्राप्ति होती नहीं। समत्व स्वत्व जानने का एक दरवाजा है। जब तक समत्व का दरवाजा नहीं खुलेगा तब तक स्वत्व की प्राप्ति नहीं होगी। समत्व प्राप्त करना परम आवश्यक है। वह समत्व जीवन में कैसे आये? सामायिक के समय आप लोग पढ़ते हैं–

साम्यं मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित्।
आशाः सर्वाः परित्यज्य समधि महमाश्रये।।

सभी प्राणियों में समता भाव हो, किसी के प्रति भी मेरे चित्त में राग–द्वेष न हो। जब तक पूरी आशा का त्याग नहीं करेंगे तब तक साम्य भाव नहीं आयेगा। वीतरागी छवि जिसमें दृष्टि नासाग्र होती है। काका कालेलकर जब भगवान् बाहुबली स्वामी के दर्शन करने गये, उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा है मैं ऐसे ही किसी देवता परमात्मा को नमस्कार नहीं करता, अपना मस्तक हर जगह नहीं झुकाता किन्तु भगवान् बाहुबलि स्वामी की इस वीतरागी मुद्रा को देखा तो माथा स्वतः चरणों में झुक गया। ऐसी वीतरागी मुद्रा, समत्व भाव देखकर मैं नहीं झुका वरन् उन्होंने मुझे झुका लिया। समत्व का कांक्षी समत्व को देखकर झुक जाता है वह ऐसा मानता है कि मुझे जो चाहिये वह सब कुछ मिल गया। जिसे कुछ नहीं चाहिये उसे अंदर में सब कुछ मिल जाता है और

जिसे बाहर से कुछ चाहिये उसे अंदर से कुछ नहीं मिलता।

महानुभाव! यह समत्वभाव ज्यों–ज्यों विकास को प्राप्त होता जायेगा त्यों–त्यों हम परमात्मा के निकट पहुँचते चले जायेंगे। परमात्मा बनने की यही एक कला है, इसे अपने अंदर प्रकट करने की कोशिश करो। हम भी भावना भाते हैं आपका समत्वभाव वृद्धि को प्राप्त हो, आप अपने स्वकीय परमात्मा को पा सकें इन्हीं सद्भावनाओं के साथ........।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत ''संगठन''

महानुभाव! जीवन बिखरे हुये पुष्पों को एक धागे में पिरोकर माला बनाने की तरह संगठित होना चाहिये। जीवन में अनेक उतार भी आते हैं, चढ़ाव भी आते हैं, जीवन के पथ पर अनेक मोड़ आते हैं। कभी जीवन संकीर्ण पुलिया से गुजरता है तो कभी राजपथ से। कभी जीवन के पथ पर धूप भी आती है तो कभी छांव भी, कभी जीवन का पथ फूलों के ऊपर से गुजर कर जाता है तो कभी पापोदय में पत्थर भी बरसते हैं। धूप और छांव पाप और पुण्य की तरह से जीवन में अपना प्रभाव दिखाते हैं। कई बार हमारा स्वयं का जीवन इतना बिखरा–बिखरा दिखाई देता है कि इस बिखरे–बिखरे जीवन को देखकर के व्यक्ति का मन भी जीने से ऊब जाता है। वही जीवन यदि व्यवस्थित बन जाये तो आनंददायी बन जाता है।

जीवन स्मृतियों का एक दस्तावेज है। इसे बार–बार पलट कर देखते रहेंगे तो अतीत की स्मृति आती रहेंगी। किसी पृष्ठ को देखकर के चेहरे पर मुस्कुराहट आती है तो किसी पृष्ठ को देखकर आँखें गीली हो जाती हैं। जीवन की पुस्तक लिखते समय नहीं मालूम चलता कि हम क्या लिख रहे हैं यह तो पढ़ते समय मालूम चलता है कि हमने क्या–क्या लिखा है। हमारा और आपका किसी का भी जीवन हो उसे हमें संभालना तो है, बिना संभाले अपने आप कुछ नहीं संभलता। चलती हुयी हवा में सिर के बाल बिखर जाते हैं तो व्यक्ति हाथों से संभालता है, किसी के वस्त्र उड़ते हैं तो वह संभालता है। दुकान में सामान उल्टा–पुल्टा पड़ा हो तो ग्राहक दूर से लौटकर चला जाता है। किसान अपने खेत में खेती करता हुआ यदि अव्यवस्थित रूप से किसी कार्य को करता है तो खेत में फसल का एक दाना भी प्राप्त न कर

पायेगा। सब संभालना जरूरी है। क्रमशः किसान द्वारा बीज बोना, सिंचाई करना, निराई करना, रखवाली करना बाद में फसल आने पर काटना यह सब कार्य व्यवस्थित होंगे तो फल प्राप्त होगा।

टूटे हुये काँच के टुकड़ो में कभी पूरा चेहरा दिखाई नहीं देता यदि एक काँच भी अपने आप में सम्पूर्ण हो तो अनेक चेहरे भी एक साथ सम्पूर्ण दिखाई दे सकते हैं। काँच के दस टुकड़ों को जोड़कर भी देखोगे तो एक चेहरा भी समग्र दिखाई नहीं देगा और एक समग्र काँच में सौ चेहरे भी देखोगे तो सौ चेहरे समग्र दिखाई देंगे। हमें अपने जीवन में सुख और शांति का अनुभव करना है तो अपने जीवन की बिखरी हुयी शक्तियों को संग्रहित करना होगा। बिखरे हुये फूल किसी के मन को आनंद देने वाले नहीं होते वही फूल एक साथ किसी गुलदस्ते में लग जायें या हार बन जायें तो हाथ में आते ही आनंद आता है। बिखरी हुई समाज न तो स्वयं की उन्नति करने में समर्थ होती है न धर्म की, न मानवता की। संगठित समाज निःसंदेह एक बहुत बड़ा कार्य करने में समर्थ होती है।

न भवेद् बलमेकेन समतायो बलावहः।
तृणैरेवकृता रज्जुर्यया नागश्च बद्ध्यते।।

एक से बल नहीं होता, संगठन बल को धारण करने वाला है। जिस रस्सी से हाथी बांधा जाता है वह परस्पर मिले हुए तृणों के द्वारा ही बनायी जाती है।

एक गाँव में एक किसान उसकी पत्नी व उसका बेटा रहता था। किसान की पत्नी घर का ध्यान रखती थी। बेटा प्रातः स्कूल जाता था, किसान खेत में जाकर अपने बैल पर जुआ रखता और दिनभर खेत में काम करता था। रात्रि 8–9 बजे घर पहुँचता तब तक बेटा सो जाता। महीनों बीत गये बेटे ने अपने पिता की सूरत

नहीं देखी। पिता ने भी अपने बेटे को कभी हँसते–खेलते नहीं देखा जब देखा तो रात में सोते ही देखा। अब बेटा थोड़ा बड़ा हो गया। गर्मियों की छुट्टियों का समय था, उसने अपनी माँ से जिद की कि मैं अभी पिता जी के पास खेत में जाऊँगा, माँ ने बहुत रोका किन्तु वह नहीं माना और पिता जी के पास पहुँचकर उनसे लिपट गया और खेलने की जिद करने लगा। पिता ने कहा बेटा अभी नहीं, अभी मुझे बहुत काम है, फसल को काटना बहुत जरूरी है यदि फसल को नहीं काटा, बारिश आ गयी तो मेरी फसल बर्बाद हो जायेगी। नहीं पिता जी! मुझे तो खेलना ही खेलना है। पिता जी अब बालक को डाँट भी नहीं पा रहे और साथ खेल भी नहीं पा रहे, क्या करें?

माँ जिस कागज में लपेट कर मक्के की रोटी लेकर आती थी, उस कागज पर अचानक उनकी निगाह पड़ी और कागज पर कहीं जुआ बनाया, कहीं हल बनाया, कुछ अंक बनाये, कहीं बैल बनाये पिता जी ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे उनके दिमाग में बस यही था कि मैं कृषि के यंत्रों को बना रहा हूँ और वह कागज फाड़कर बालक को दे दिया और कहा तुम इस कागज को जोड़कर ले आओ तब खेलेंगे। पिता ने सोचा, मुझे खुद नहीं ज्ञात कि मैंने क्या–क्या बनाया है, ये इसे शाम तक भी जोड़ नहीं पायेगा और तब तक मेरा काम भी पूरा हो जायेगा। फिर घर जाकर इसके साथ खेल लूँगा। ऐसा सोचकर किसान अपने काम में लग गया। थोड़ी देर भी नहीं हो पायी बेटा आकर के अपने पिता जी से कहता है पिता जी मैंने आपका दिया कागज जोड़ दिया अब चलो मेरे साथ खेलने। पिता ने कागज देखा और सोच में पड़ गये कि मैंने कृषि के यंत्र बनाये थे और इसने इतनी जल्दी कैसे जोड़ दिये। वे बोले–बेटा! तूने जीवन में कभी किसानी के यंत्रों को देखा भी नहीं फिर ये तुमने कैसे किया।

बेटा बोला पिताजी मुझे नहीं पता आपके किसानी यंत्र क्या हैं, मैं तो ये जानता हूँ माँ जिस कागज में रोटी लायी थी उस कागज पर मानव का एक हाथ बना था, मुझे ज्ञात है कि हाथ में चार अंगुली होती हैं एक अंगूठा होता है। मैं सारे कागज के टुकड़े खोलकर अंगुली से अंगुली जोड़ता चला गया तो पूरा हाथ जुड़ गया। मुझे नहीं पता आपके कृषि यंत्र कैसे जुड़ गये।

महानुभाव! जब व्यक्ति जोड़ना प्रारंभ करता है तो अंगुली जुड़ते ही हाथ बन जाता है, मुट्ठी बन जाती है। एक–एक अंगुली अलग हो तो व्यक्ति तोड़कर अलग कर सकता है पूरी अंगुली जब एक साथ बंध जाती है तो वह शक्ति का प्रतीक होती है। संगठन में कितनी शक्ति होती है इस बात को वही जान सकते हैं जो संगठन करना जानते हैं। जब तक व्यक्ति अपने हाथ नीचे लटका कर रहता है, तब तक अंगुली खुली रहती हैं और जैसे ही हाथ जोड़ता है उसके हाथ उन्नति की दशा में ऊपर की ओर जाते हैं।

महानुभाव! बिखरी हुई शक्तियाँ कभी भी बड़े कार्य करने में समर्थ नहीं होती। संगठित शक्तियों से कोई भी कार्य किया जा सकता है। संगठित शक्तियों के लिये कोई भी कार्य असंभव नहीं है। तिनका–तिनका जोड़कर एक कृषक छप्पर बना देता है, तंतु–तंतु जोड़कर एक जुलाहा वस्त्र बना देता है, एक–एक ईंट को जोड़कर एक राजमिस्त्री मकान तैयार कर देता है, एक–एक तंतु को जोड़कर के रस्सा बन जाता है, बनाने वाला एक–एक पत्ते को जोड़कर के पत्तल बना लेता है, एक–एक लकड़ी को जोड़कर के टोकरी बना लेता है यदि ये सब अलग–अलग हैं तो नहीं बना सकता।

माला के मोतियों को पिरोने में धागे की भूमिका होती है, कणों को आपस में जोड़ने के लिये स्निग्धता की जरूरत होती है, राजमिस्त्री ने ईंटों को जोड़ने के लिये सीमेंट का प्रयोग किया,

सर्राफ ने सोने–चाँदी में रत्न जोड़ने के लिये उसे पिघलाया, दो टुकड़ों को जड़ने के लिये solution का प्रयोग किया, लकड़ी जोड़ने के लिये फेविकॉल का प्रयोग किया। महानुभाव! महत्वपूर्ण यह है कि किससे कैसे जोड़ दिया। सब चीजें बिखरी पड़ी थी, जोड़कर के वे वस्तुयें भी बहुमूल्य बन गयीं। जो बिखरी हुई ईंटें सभी को कष्ट दे रही थीं, मार्ग से गुजरने वालों को ठोकर दे रही थी उन्हीं ईंटों को जोड़कर महल बन गया। तिनके जो उड़कर आँखों में चुभ रहे थे, तिनके–तिनके जोड़े तो मजबूत रस्सा बन गया। बिखरे पन्नों को जोड़ दिया तो कॉपी बन गई। व्यवस्थित करने वाला व्यक्ति निःसंदेह मानवता का हित करने में समर्थ होता है।

समाज को संगठित करना भी जरूरी होता है। संगठन सुख और शांति का स्रोत है, शक्ति का स्रोत है। जैसे कुआँ खोदने से जल का स्रोत प्राप्त होता है ऐसे ही जीवन में यदि सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत कहीं मिलता है तो संगठन से मिलता है। बिना संगठन के शक्ति को संगठित नहीं किया जा सकता। एक परिवार संगठित है तो वह परिवार प्रतिष्ठा के साथ जिंदगी जीता है और एक परिवार के चार सदस्य भी बिखर जायें तो चारो एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं और चारों का जीवन नारकी तुल्य बन जाता है।

संगठन में बहुत शक्ति होती है। देखो–सुई दो कपड़ों के टुकड़ों को जोड़ देती है वह वस्त्र पहनने के योग्य बन जाता है। कैंची काटने का काम करती है वह कटा वस्त्र उपयोग के योग्य नहीं रह पाता। दर्जी के पास कोई व्यक्ति अपने पूरे परिवार के लिये वस्त्र सिलवाने थान लेकर गया। थान भी पूरा नहीं पहन सकते और दर्जी ने टुकड़े–टुकड़े काट दिये तो भी नहीं पहन सकते। सिलाई करके वे वस्त्र जुड़ गये, वस्त्र सुव्यवस्थित बन

गये। उस दर्जी ने सिलाई करने वाली सुई को अपनी टोपी में लगा लिया और काटने वाली कैंची को अपने पैरों के पास पटक दिया। बेटे ने पूछा–पिता जी यह कैंची इतनी बड़ी है फिर भी आपने पैंरो के नीचे पटक दिया और सुई इतनी छोटी सी है फिर भी आपने अपनी टोपी में क्यों लगा लिया? पिता ने कहा बेटा! कैंची बड़ी भले ही हो पर वह तोड़ने या काटने का काम करती है और सुई छोटी सी भले ही है पर सदैव जोड़ने का काम करती है इसीलिए सुई का स्थान सिर पर व कैंची को पैरों में एक तरफ डाल दिया। जो समाज में जोड़ने का काम करता है वह समाज में आदर्श होता है। जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का काम करता है, जो आत्मा को आत्मा के गुणों के साथ जोड़ने का कार्य करता है, जो एक सामान्य व्यक्ति को धर्म से जोड़ने का काम करता है वह महात्मा सज्जन कहलाता है, ऋषि मुनि कहलाता है, वह पूज्यनीय, प्रशंसनीय सम्मानीय हो जाता है और जो समाज में बड़ा होकर भी तोड़ने का कार्य करता है, काटने का कार्य करता है, भेद डालने का कार्य करता है वह निःसंदेह समाज में निंदा, अपमान, तिरस्कार को प्राप्त होता है।

संगठन का सूत्र यही है कि अपनी आत्मा को धर्म से अनुस्यूत करो। शास्त्रों के दो वाक्य आपकी भटकती हुई आत्मा को जोड़ सकते हैं, शास्त्रों के शब्द आपको धर्म से जोड़ सकते हैं। वे शब्द संगठन के मूल हैं, हित करने वाले हैं। किसी व्यक्ति की जो बात आपको आपसे तोड़ दे, आपके परिवार को तोड़ दे, आपकी समाज को तोड़ दे, आपकी संस्था–संगठन को तोड़ दे वह कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न बना रहे वह कभी भी पूज्यनीय, प्रशंसनीय नहीं बन सकता है। आप सभी जीवन में संगठित रहने की चेष्टा करो। आपका परिवार, आपका समाज, आपका समूह, आपका संघ संगठित है तो आपके पास शक्ति

का कोष है। जैसे पर्वत से झरता हुआ झरना और कुयें में भरा हुआ पानी जल का स्रोत है ऐसे ही संगठन शक्ति का स्रोत है। जब–जब हम संगठित होते चले जायेंगे तब–तब शक्ति आती जायेगी और शक्ति के लिये विश्व अपना शीश झुकाता है। शक्ति से ही आशीष लिया जा सकता है। शक्ति सदैव पूजनीय होती है किन्तु शक्ति का सदुपयोग हो तब और दुरुपयोग होता है तब वह अभिशाप बनती है। आप सभी संगठित रहें, शक्ति का सदुपयोग करें, अपनी शक्ति को संग्रहित करें जिससे आप भी अपने विशेष उद्देश्य को पूर्ण करें, ऐसी मैं आपके प्रति मंगल भावना भाता हूँ। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ...........।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'सेवा ही परम धर्म'

महानुभाव! धर्म की व्याख्या अनेक प्रकार से शास्त्रों में निबद्ध है। प्रत्येक सम्प्रदाय, मजहब, आम्नाय, जाति एवं समूह धर्म की व्याख्या अलग–अलग प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। संभव है वे सभी व्याख्यायें समीचीन भी हों। क्योंकि प्रत्येक वह व्याख्या जो प्राणी को उसके स्वभाव की ओर ले जाये वह धर्म की श्रेणी में संभव है। किसी मंजिल को प्राप्त करने के लिये यदि राजमार्ग एक है तो अपवाद मार्ग अनेक संभव हैं। पहाड़ की चोटी पर बने मंदिर तक पहुँचने के लिये एक रास्ता है जिस पर वाहन भी चल सकते हैं किन्तु अनेक–अनेक दिशाओं से उस पहाड़ की चोटी पर बने मंदिर तक पहुँचने के लिये अनेक पगडंडियाँ हैं जिनके माध्यम से भी मंदिर की स्थिति, मंदिर की चोटी दिखती है और जिन पगडंडियों पर चलकर मंदिर के समीप पहुँचा जा सकता है। कोई व्यक्ति यह न सोचे कि जिस कार्य को मैं कर रहा हूँ वही केवल धर्म है। व्यवहार धर्म के अनेक रूप हैं। जो सिर्फ यह सोच लेता है कि जो मैं कर रहा हूँ बस वही धर्म है तो वह भ्रमित है। यदि वह अपने ही कार्य को सम्पूर्ण मान लेता है तो वह अहंकारी भी है। दूसरे को अपने से न्यून–जघन्य मानना यह अहंकार का प्रतीक है। जो व्यक्ति अपने समान ही हर किसी को मानने को तैयार हो जाता है संभव है उसने धर्म के मर्म को समझ लिया।

धर्म के संबंध में नीतिकारो ने लिखा है **''सेवा धर्म परम गहनो, योगिनामप्यगम्यः''** सेवा ही परम धर्म है। योगी पुरुष भी उस परम धर्म को, गहन धर्म को जानने में असमर्थ हैं। जिन्होंने भी शुद्धमन से, मधुर वचनों के साथ पवित्र विचारों से सेवा की है, उसकी वह सेवा धर्म की श्रेणी में आती है और उस धर्म से वह बाह्य जगत् में भी उन्नति और आत्मा के वैभव को

भी प्राप्त करता है। उसे जिस सुख–शांति की अनुभूति होती है वह अनुभूति करोड़ों–अरबों की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले किसी पूंजीपति, उद्योगपति राजा को भी प्राप्त न हो। यहाँ पर सेवा को परम धर्म कहा, सेवा को सामान्य धर्म नहीं कहा। शास्त्रों में अनेक उदाहरण आते हैं चाहे शबरी ने राम की सेवा की और चाहे चंदनबाला ने भगवान् महावीर स्वामी को आहार दिया, चाहे सुभग ग्वाले ने एक रात्रि मुनिराज की वैय्यावृत्ति की और चाहे श्रवणकुमार ने अपने माता–पिता की सेवा की, चाहे मदर टेरेसा ने मानवजाति की सेवा की और चाहे सिन्धु ताई ने अनाथ बच्चों को आश्रय देकर उनका जीवन संचालित किया। ऐसे एक नहीं अनेकों उदाहरण मिलेंगे।

यदि दृष्टि दूषित है तो निर्दोष सेवा करने वाले, धर्म का पालन करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में भी अनेक बुराईयाँ दिखेंगी। बुराई सामने वाली वस्तु में हो या न हो यदि हमारी दृष्टि में बुराई है तो निर्दोष में भी बुराई खोजी जा सकती है। और हमारी दृष्टि में बुराई नहीं है तो सदोषता में भी निर्दोषता के गुण देखे जा सकते हैं। एक क्षण में ही श्वेत दीवार काली दिखाई दे सकती है, उसे काला देखा जा सकता है उस पर कालिमा करने की आवश्यकता भी नहीं सिर्फ अपने चश्मे पर काला रंग लगाना है जिससे सम्पूर्ण श्वेत दीवार भी काली दिखने लगेगी। ऐसे ही जो व्यक्ति दोषों को देखता है उसके लिये संसार में कहीं दोष हो या न हो वह देखने वाला तो दोष खोज लेता है।

जो जिसका खोजी होता है वह उसको खोज ही लेता है। पुण्यात्मा व्यक्ति पुण्यात्मा की और पापात्मा व्यक्ति पापात्मा की खोज करता है। अभक्ष्य का सेवन करने वाला अभक्ष्य को प्राप्त करता है। भक्ष्य का सेवन करने वाला भक्ष्य को प्राप्त करता है,

सदाचार का पालन करने वाला सदाचार का पालन कर लेता है और कदाचार का सेवन करने वाला कदाचार करता है। एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य के साथ जीता है तो एक व्यभिचार के साथ भी। एक व्यक्ति को संसार में सब अच्छे ही अच्छे दिखाई दे रहे हैं तो दूसरे को बुरे ही बुरे, निःसंदेह दृष्टि का दोष है।

हम धर्म को अन्य–अन्य प्रकार से रूपान्तरित करते हैं। दान देना बहुत बड़ा धर्म है, त्याग करना बहुत बड़ा धर्म है, पूजा करना बहुत बड़ा धर्म है, संयम की साधना करना बहुत बड़ा धर्म है, तपस्या करना बहुत बड़ा धर्म है, क्षमा करना बहुत बड़ा धर्म है, विनम्र होना बहुत बड़ा धर्म है, चित्त की सरलता सहजता–पवित्रता बहुत बड़ा धर्म है, सत्य बोलना भी धर्म है। यह सब धर्म की कोटि में आते हैं किन्तु इसका आशय ऐसा नहीं कि सेवा करना धर्म नहीं। सेवा करना इन सभी धर्मों से उत्कृष्ट भी हो सकता है। ये सब धर्म की कोटि में तभी आते हैं जब इनके अंदर में सेवा का भाव, पर हित का भाव और स्वहित की भावना हो। यदि दान भी दिया अहंकार के लिये दिया तो क्या वह ध र्म की कोटि में आयेगा क्या? यदि किसी ने स्वाध्याय भी किया और शब्दों का संग्रह किया दूसरों का अपमान–तिरस्कार करने के लिये तो क्या वह धर्म की कोटि में आयेगा? किसी ने सत्य भी बोला दूसरों के प्राण लेने के लिये तो क्या धर्म की कोटि में आयेगा? चाहे कोई व्यक्ति शीलव्रत का पालन कर रहा है केवल बाह्य प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये, किन्तु पर्दे के पीछे पाप कर रहा है तो क्या बाहर से किया शील का पालन धर्म की कोटि में आयेगा? यदि कोई व्यक्ति दूसरों को ठगने के लिये, दूसरों को दुःख देने के लिये ऐसा कार्य कर रहा है जिससे लोक प्रसिद्धी प्राप्त हो तो क्या वह धर्म की कोटि में आयेगा? नहीं आयेगा।

सेवा चाहे जिसने भी की है यदि शुद्ध हृदय से की है, निःस्वार्थ भावना से की है तो सेवा के फल को कोई टाल नहीं सकता। जिनशासन में तीर्थकर प्रकृति का बंध कराने वाली सोलहकारण भावना का वर्णन है। उन भावनाओं में एक भावना आती है वैय्यावृत्य भावना। आप 16 कारण की पूजन करते होंगे उसकी जयमाला में एक पंक्ति आती है–

निशदिन वैय्यावृत्य करैया, सो निहचे भव नीर तिरैया।।

जो वैय्यावृत्ति करता है, किसी भी साधक की निश्चय साधना में सहयोगी बनता है, सहयोगी बनने की भावना भाता है वह निश्चित ही संसार सागर से पार हो जाता है। आप जानते हैं वह सुभग ग्वाला एक दिन की वैय्यावृत्ति करने से अगले भव में सुदर्शन सेठ बनकर मोक्ष को प्राप्त करता है। नंदिषेण जिन्होंने वैय्यावृत्ति की जिसके प्रभाव से वे कामदेव वसुदेव हुये। पूर्व में हनुमान ने, बाहुबली ने, जीवंधर ने, नागकुमार ने, श्रीषेण राजा ने सेवा की। कितने सारे उदाहरण आपके समक्ष हैं जिसके फलस्वरूप उन्हें उत्तम शरीर मिला, वज्रवृषभनाराच संहनन मिला और उन्हें ऐसी बुद्धि मिली जिससे वे आत्मा और अनात्मा को जानने में समर्थ हुये।

जो मन में सेवा का फल चाहने की भावना से सेवा करते हैं तो संभव है सेवा करना अधूरा है। आपको ज्ञात होगा महाराष्ट्र के पाणाशाह मानचंद्र जो विद्यार्थियों को अपने घर बुलाते, उन गुरुकुल के छात्रों को भोजन कराते व उन्हें एक–एक चाँदी का सिक्का देते और कहते थे कि ये भविष्य में धर्म का उत्थान करने वाले होंगे, ये समाज के स्तम्भ होंगे। कितने राजा ऐसे हुये जो वेष बदलकर के अपने नगर में किसी गरीब के यहाँ पर स्वयं अनाज रख करके आये। कितने श्रेष्ठी हुये अमर चन्द्र दीवान जैसे

जो वेष बदलकर दूसरों के घर में चुपचाप अनाज की पोटली रख आये, कितने लोगों ने गुप्त रूप से सेवा की जो सेवा उन्हें ऊँचाईयों तक ले गयी।

सिन्धु ताई नामक एक महिला जिन्होंने अपने जीवन में विषम परिस्थितियों का सामना किया। 20 वर्ष की उम्र में जब वह गर्भवती थी तब उनके पति ने उन्हें दोष लगाकर छोड़ दिया, गायों के तबेले में उन्होंने प्रसूति की। कोई उनके पास नहीं था गायों ने उन्हें घेर लिया, एक गाय रक्षा करने में ऐसे खड़ी हो गयी जैसे माँ बनकर ही उनकी सेवा कर रही हो। प्रसूती के बाद गर्भस्थ शिशु का नाल काटने के लिये वहाँ पर कोई वस्तु नहीं थी उन्होंने पत्थर से उस नाल को तोड़ा, एक बार से वह नाल नहीं कटा, 16 बार उस पत्थर की चोट मारी तब वह नाल कटा। उन परिस्थितियों में रहने वाली ताई जिन्होंने भीख माँग–माँग कर अपना पेट भरा, जिन्होंने श्मशान पर जलती चिताओं पर रोटियाँ पकायी और अनाथ बच्चों को भोजन कराया। आज वे अनाथ आश्रम के माध्यम से 1400–1500 बच्चों का पालन कर रहीं हैं। वह महिला जो स्वयं अनाथ थी सेवा करने से आज स्वयं देश में सम्मान को प्राप्त है। पाँच राष्ट्रपतियों ने उन्हें सम्मानित किया। श्रवणकुमार का नाम सुनते ही मन श्रद्धा से भर जाता है, क्या ऐसा भी कोई मातृ–पितृ भक्त हो सकता है। ऐसे कितने उदाहरण हैं जगत में। चाहे सेवाभावी रामचन्द्र के बारे में देखो जिन्होंने घायल जटायु पक्षी की सेवा की।

सेवा मौलिक है। सेवा करने वाला वास्तव में जीवन जीने की कला जानता है। सत्यता तो यह है कि किस व्यक्ति के जीवन में कहा कैसी प्रतिकूलता आ जाए, कहा कोई संकट आ जाए किसी को ज्ञात नहीं। इसलिए निःस्वार्थ भाव जिस व्यक्ति की आवश्यकता हो उनकी सेवा करनी चाहिए। ध्यान रखिए, सेवा

घर से प्रारंभ होनी चाहिए। माता–पिता सबसे पहले ईश्वर हैं। उनकी सेवा करने वाला ही वास्तव में दूसरों की सेवा कर सकता है। जो अपने माता–पिता की ही सेवा नहीं कर सकता वह अन्य लोगों की क्या सेवा करेगा और यदि कर रहा है तो समझ लें या तो यशःकीर्ति की चाह में कर रहा है या अन्य कोई स्वार्थ वा लोभ है।

जो माता–पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे उनकी सेवा करें तो वे अपने माता–पिता की सेवा अवश्य करें। जैसा करोगे वैसा पाओगे। जो संतान अपने माता–पिता की सेवा कर रहा है उसे मैं सब डिग्री होल्डर्स से अधिक श्रेष्ठ व ज्ञानी कहूँगा। क्योंकि हाई एज्यूकेशन लेने के बाद भी माता–पिता की सेवा नहीं कर पाए तो वो व्यर्थ है बल्कि जिस शिक्षा में सेवा करने की शिक्षा नहीं दी जाती वह शिक्षा समीचीन नहीं है। 'सेवा से मिलती है मेवा' यह पूर्णरूपेण सत्य है किन्तु वही सेवा जो निःस्वार्थ , निःकांक्ष भाव से सेवा भाव से की गई हो।

कोई धर्मशाला, संत भवन, जिनवाणी भवन आदि बनवाकर सेवा करता है तो कोई स्कूल, कॉलेज, हॉस्पिटल खोलकर सेवा करता है जिससे लाखों लोग समीचीन शिक्षा व निरोगी काया प्राप्त कर सकें। यदि किसी के पास धन नहीं तो असमर्थ वा कमजोर बच्चों को पढ़ाकर सेवा करता है तो कोई दरिद्रों को कंबल, वस्त्रादि देकर उनकी सेवा करता है।

महानुभाव भाऊरावपाटिल जिन्होंने अनेक स्कूल और कॉलेजों की स्थापना की, जो स्वयं विरक्त भाव से जीये। वीरेन्द्र हेगड़े जिनके यहाँ प्रतिदिन हजारों व्यक्ति भोजन करते हैं। सेवा मन से भी की जाती है, वचनों से भी की जाती है, सेवा तन से भी की जाती है और सेवा धन व साधनसामग्री से भी की जाती है।

सेवा करने वाला व्यक्ति आज सेवा करते दिखाई दे रहा है वह कल का भगवान् है। कभी भी अपने तन का अहंकार मत करो, कभी अपनी अच्छी प्रभावक वाणी पर अहंकार मत करो, कभी अपने मस्तिष्क के क्षयोपशम का अहंकार मत करो, कभी अपने धन व साधन सामग्री का अहंकार मत करो। वक्त नहीं लगता वक्त बदलने में।

समय–समय की बात है समय–समय का खेल।
समय बदलने में नहीं लगे जरा सी देर।

वक्त को देखो, इंसान कभी बुरा नहीं होता वक्त बुरा बना देता है, इंसान अच्छा नहीं होता वक्त अच्छा होता है तो इंसान को भी अच्छा बना देता है। वक्त बुरा आता क्यों है? जब इंसान अच्छे वक्त में अच्छाई को भूल जाता है, अच्छा वक्त कब आता है जब इंसान बुरे वक्त में भी अच्छाई को नहीं भूलता है तब वक्त अच्छा आ जाता है। वक्त के देखने से अपना वक्त सुधर जाता है। जिन प्रश्नों के उत्तर आप नहीं दे सकते उन प्रश्नों को वक्त पर छोड़ दो वक्त खुद व खुद उनके उत्तर दे देगा।

आज वर्तमान में जब विश्व कोरोना नामक महामारी से जूझ रहा है, आज भी कितने लोग मानवता की सेवा में संलग्न हैं। कोई मन से भावना भा रहा है, तो कोई वचनों से प्रेरणा दे रहा है, कोई अपना धन व्यय कर रहा है सभी अपनी शक्ति अनुसार सेवा में लगे हुये हैं। आज पूरा भारत एक है, सभी एक साथ इस महामारी से निपटने में संलग्न हैं। सेवा पशु–पक्षियों की भी की जाती है, सेवा अनाथों की भी की जाती है। जिसे सेवा करने का मौका मिल रहा है समझो उसका पुण्य का उदय है अन्यथा कई व्यक्ति तरसते हैं कि हमें भी सेवा का अवसर मिले। सेवा उसी की करो जिसे तुम्हारी सेवा की आवश्यकता है। जिसे

आवश्यकता नहीं है उसकी सेवा करोगे तो वह आलसी बन जायेगा, जिसे औषधि की आवश्यकता नहीं है उसे औषधि दे दोगे तो वह रोगी बन जायेगा, जिसे साधन की आवश्यकता नहीं है उसे साधन दे दो तो वह उसका दुरुपयोग करेगा। जब पेट भरा हो तब भोजन देना वह भोग और रोग का कारण बनेगा योग का कारण नहीं बनेगा इसीलिये अपनी वस्तु का श्रेष्ठ उपयोग करना है तो सेवा तन से भी करनी है, मन से भी करनी है, वचनों से भी करनी है और जो तुम्हारे पास पूर्व पुण्य से उपलब्ध धन–साधन–सामग्री है उसका भी सही सदुपयोग करो। कौन जानता है कब, कैसा वक्त आयेगा, यह धन आदि तुम्हारे पास रहे या न रहे। इसीलिये निःस्वार्थ भाव से इस सेवा को परमधर्म मानते हुये इसे अपने जीवन में जीवंत करें, आचरण में लायें यही आत्महित व सुख का मार्ग है।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘तनु जिन मंदिर’

महानुभाव! संसार में विद्यमान जितने भी पदार्थ हैं वे सभी पौद्गलिक पदार्थ उभय शक्ति से युक्त हैं। इसका आशय यह हुआ उन पदार्थों में ऊपर जाने की भी क्षमता है और नीचे आने की भी क्षमता है। मकान में बनी हुयी सीढ़ियाँ छत तक पहुँचाने में निमित्त बनती हैं तो वे ही सीढ़ियाँ नीचे उतरने के लिये भी निमित्त बनती हैं। सीढ़ियों का उपयोग कैसे करना है यह सीढ़ियाँ नहीं बतायेंगी यह समझ, यह बुद्धि, यह सोच उस व्यक्ति के पास होना चाहिये। रस्सी को ऊपर फेंककर के पेड़ पर चढ़ा भी जा सकता है और रस्सी को खूँटी पर बांधने से कुएँ में नीचे भी उतरा जा सकता है। रस्सी नहीं कहेगी कि मुझे ऊपर फेंककर चढ़ जाओ या खूँटी गाढ़कर बाँधों और नीचे उतर जाओ। यह स्वयं की बुद्धि–विवेक, सोच–समझ व्यक्ति के पास होनी चाहिये।

आज खेद व दुःख की बात यह है कि वस्तुयें तो पर्याप्त से भी ज्यादा हैं किन्तु उनका सदुपयोग करने की हमारी बुद्धि कहीं तिरोहित हो गयी है। जिस भी व्यक्ति के पास जो कुछ भी साधन सामग्री है उसका सदुपयोग करना प्रारंभ कर दे तो वह मोक्षमार्गी बन सकता है। ये मत सोचो मेरे पास बहुत सारा होगा तब मैं परोपकार करूँगा। थोड़ा है या बहुत यह महत्व की बात नहीं है, महत्व की बात यह है कि उसका आपने उपयोग क्या किया। जैसे किसी भिखारी ने भीख में मिले चार आम और चार रोटी मार्ग में चलते उन अनाथ भिखारी बच्चों को दे दी जो बेचारे भूख से तड़प रहे थे किन्तु एक व्यक्ति जिसके पास एक लाख रुपया व्यापार में लाभ का बचा था, घर में रखा था सोच रहा था मेरे पास जब 1 करोड़ हो जायेगा तब उसमें से 99 लाख दान कर दूँगा। उस व्यक्ति की यह सोच सिद्ध करती है कि वह

व्यक्ति उस व्यक्ति से बहुत पीछे है जिसने अपनी चारों रोटी और चारों आम दे दिये। उस भिखारी ने अपना 100% दे दिया और व्यापारी अभी कमाएगा, जोड़ेगा तब देने की भावना भा रहा है और दे पाये नहीं भी दे पाये यह जरूरी नहीं है। यथेच्छ धन कभी किसी के पास नहीं हुआ, यथेच्छ साधन सामग्री कभी किसी के पास नहीं हुयी किन्तु हाँ, जो प्राप्त है उसे यथेच्छ बना लो।

यदि आपको जो आप चाहते हैं वह नहीं मिल रहा है तो जो मिला है उसे चाहना प्रारंभ कर दो, उसी में से सुख निकलना प्रारंभ हो जायेगा। सुख हमारी सोच में है, वस्तु में नहीं है। सुख हमारे विशुद्ध परिणामों में है, सुख हमारी क्रिया पर निर्भर नहीं करता। हमारे पास परिणामों को समझने की सामर्थ्य आ गयी तो समझो सम्पूर्ण शास्त्रों के सार को समझ लिया। यदि हमारे पास ये कला नहीं आयी और संसार की सैकड़ों–हजारों कलायें भी सीख लीं तो हम निरे मूर्ख हैं। एक नहीं अनेक विषयों में MA भी कर लें, एक नहीं कई विषयों पर शोध भी कर लें तब भी मूर्ख हैं जब तक हम अपनी आत्मा को शुद्ध करने की कला नहीं सीख पाते हैं, जब तक हम अपनी उपलब्ध सामग्री का सदुपयोग करने की कला सीख नहीं पाते हैं।

यदि हमारे पास साधनों के सदुपयोग की बुद्धि नहीं है तो हमारा साधन सामग्री को प्राप्त करना व्यर्थ है और व्यर्थ नहीं अनर्थकारी है। एक ही वस्तु वरदान स्वरूप भी हो सकती है और अभिशाप स्वरूप भी हो सकती है। जिस दियासलाई से हजारों बुझे दीपक जलाये जा सकते हैं और अंधकार को दूर भगाया जा सकता है उसी दियासलाई की एक काढी (तिल्ली) के माध्यम से बस्ती की बस्तियाँ जलायी जा सकती हैं। बात यह नहीं है कि आपकी माचिस में एक काढी है या अनेक, महत्वपूर्ण यह है कि आप उसका उपयोग कैसे करते हो।

आप सोचो कि मैं दिया तब जलाऊँगा जब मेरे पास पूरी माचिस होगी, नहीं एक काढी से पहले अपना दीया जलाओ जिससे अनेक दीप जलाये जा सकते हैं। आप किस प्रकार से वस्तु का सदुपयोग करते हैं यह आप पर निर्भर है।

महानुभाव! वस्तुयें कभी नहीं कहतीं कि मेरा यह उपयोग है या यह दुरुपयोग। दूध ने आज तक नहीं कहा कि मैं दही बनूँगा या मलाई बनूँगा, दूध ने कभी नहीं कहा कि मैं पनीर बनूँगा या मावा बनूँगा। दूध, दूध है दूध में मुट्ठीभर शक्कर डाल दो तो मीठा हो गया, एक चम्मच जामन डाल दो तो दही बन गया, दूध में थोड़ी नींबू की बूँद डाल दी तो पनीर बन गया। दूध कुछ भी बन सकता है ऐसे ही हम भी अपने इस शरीर का जैसा चाहे वैसा उपयोग कर सकते हैं। शरीर यदि भोगों में लीन हो गया तो जब तक जीयेगा तब तक रोगी बनकर जीयेगा और आगे भोग भोगते–भोगते मर गया तो नरकादि के दुःखों को देने वाला होगा। और यदि यह शरीर योग साधना में लगा दिया, प्रभु परमात्मा की भक्ति में लगा दिया, इस शरीर रूपी दूध को खट्टी छांछ न बनाकर मावा बना दें या घी निकाल लें तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि यह शरीर उभय शक्ति से युक्त है। आप पढ़ते हैं–

तनु जिन मंदिर, मन कमलासन, त्यावरी चिन्मय तुंग।
यजे जिन पदकमल निःसंग।
ज्ञान गंगाजलि क्षालोनि निर्मल, संचितपातक भंग
यजे जिन पदकमल निःसंग।।

हे भगवान्! मेरा शरीर मंदिर है, मेरा मन वेदी है, कमलासन है जिस पर मेरा आत्मा रूपी परमात्मा विराजमान है। उस आत्मा रूपी परमात्मा का अभिषेक सम्यग्ज्ञान रूपी जल के माध्यम से करता हूँ जिससे सर्व पातक नष्ट हों।

मंदिर का निर्माण कैसे करते हैं? क्या गंदगी से करते हैं? गटर के पानी से करते हैं? अरे कभी नहीं, इन गंदी चीजों को तो कोई अपने मकान में भी नहीं लगायेगा। भगवान् के मंदिर में तो ईंट भी शुद्ध जल में धोकर लगायेगा। मजदूर भी काम कर रहा है तो नहा–धोकर अपने प्रभु परमात्मा का स्मरण करके काम करता है। कहता है–मैं मजदूरी नहीं कर रहा मैं तो प्रभु परमात्मा की पूजा कर रहा हूँ यह मेरी पूजा करने का तरीका है। भगवान् के मंदिर में पानी भी लगा रहा है तो छान–छान कर लगा रहा है। मंदिर में धन भी लगाता–लगवाता है तो कहता है वही अपना धन लगाये जिसका ईमानदारी का धन हो, बेईमानी का धन यहाँ पर देने नहीं आना। बेईमानी का धन व्यय करने के लिये संसार में बहुत जगह हैं। मंदिर निर्माण में शुद्ध वस्तु, उच्च वस्तु लगायी जाती है।

मंदिर बनकर तैयार हो गया, शिखर भी बन गया, कलश चढ़ रहे हैं अनेक लोगों की भावनायें उस मंदिर से जुड़ी हैं क्योंकि भावनाओं से वह मंदिर बना है नहीं तो मकान इससे ऊँचे–ऊँचे और भी बन सकते हैं। मकानों को जाकर कोई प्रणाम नहीं करता, प्रणाम तो मंदिरों को किया जाता है, मंदिर की देहरी को छूकर माथे से लगाया जाता है। नव देवताओं में जिनालय को एक देवता मानते हैं उसे अर्घ्य चढ़ाते हैं। वह भव्य जीव अपनी क्षमता के अनुसार वेदी बनवाता है, उस पर सोने का काम कराता है, कई बार तो ऐसा करते हैं कि वेदी के सौन्दर्य में ही अधिक से अधिक धन व्यय कर दिया पुनः भगवान् विराजमान किये। वह पाषाण भले ही सामान्य रहा हो किन्तु उस पाषाण को भगवान् बनाने से पहले उसकी पूजा की, तराशा और शिल्पकार ने इतने शुद्ध भाव डाल दिये कि उस प्रतिमा को देखकर लगा कि जीवंत मूर्ति ही दिखाई देती हो और मस्तक अपने आप झुक गया।

महानुभाव! इस शरीर को मंदिर बनाने के लिए बाह्य अशुभ पदार्थ का प्रयोग न करें। मद्यपान शरीर को मंदिर तो दूर एक भवन भी नहीं बना सकता वह तो इसे टूटा–फूटा दुर्गन्धमय खंडहर बना देगा। मघपान करकें, अभक्ष्य सेवन करके शरीर में रोगों की, दुर्भावनाओं, विकृति–विकारों की ही उत्पत्ति हो सकती है। जब अच्छे निर्माण हेतु अच्छी सामग्री की आवश्यकता होती है तब शरीर को मंदिर बनाने के लिए किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता होगी, यह आप भलीभाँति जानते हैं। अतः अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करें। और मन रूपी वेदी पर आत्मा रूप परमात्मा तभी विराजमान हो सकते हैं जब भावनाएँ परिशुद्ध हों। भावनाओं की, परिणामों की शुद्धि से ही मन शुद्ध माना जाता है। ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार, छल आदि युक्त भावनाओं से मन रूपी वेदी का निर्माण संभव नहीं। उसके लिए क्षमा, वात्सल्य, मैत्री आदि सात्विक भावनाएँ आवश्यक हैं।

मंदिर केवल ईंट–पत्थर से नहीं बनता, मंदिर केवल पैसे से नहीं बनता। हर पैसे वाला यदि मंदिर बना सके तो आज संसार में जितने घर नहीं होते उससे कई गुने मंदिर होते। मंदिर भावनाओं से बनते हैं। यदि बाहर के मंदिर बनाने की सामर्थ्य नहीं है तो हृदय को मंदिर बनाओ। आपको ज्ञात है मढ़िया जी का मंदिर, जिसे एक पीसनहारी बुढ़िया माँ ने अपनी भावनाओं के बल से बनाया। ईंग्लैंड का राजा जो 20 लाख करोड़ डॉलर का मालिक था किन्तु कभी धर्म में अपना पैसा नहीं लगा पाया, जहाज फट गया डूबकर मर गया। ऐसे ही भारतवर्ष में आज भी हजारों करोड़ों रुपयों के मालिक हैं किन्तु उनसे पूछो क्या कभी उन्होंने अपने जीवन में अपने घर में एक अच्छा सा मंदिर बनाया, क्या कभी बाहर एक मंदिर बनाया? नहीं बना पाये होगे क्योंकि हो सकता है उनका धन इतना उत्कृष्ट नहीं हो कि मंदिर में लग सके।

मंदिर बनाने के लिये सबसे पहली चीज आवश्यक है 'भावना' पुनः फिर मंदिर में लगाया द्रव्य शुद्ध होगा तो उतना ही पूजा करने में आनंद आयेगा। ईमानदारी का धन होगा तो मंदिर में अतिशय उत्पन्न होगा। भगवान् की प्रतिमा विराजमान करने वाले व्यक्ति ने वर्षों–वर्षों तक भावना भायी होगी और कहा होगा हे प्रभु! मैंने अपनी भावनाओं को मूर्त रूप दिया है, जब भावनायें मूर्तरूप में आकर साकार परमात्मा के रूप में सामने आती हैं तो परमात्मा की मूर्ति साक्षात् दिखाई देती है, जो माँगो सो मिलता है, बिना माँगे मिलता है। भगवान् की वेदी की शोभा बढ़ाने के लिये अपने धन को लगाते हुये सौभाग्य मानता है कि हे प्रभु! आपके चरणों में अपना धन लगाकर जितना पुण्य कमा सकूँ कमाऊँगा। पुनः फिर किसी आचार्य परमेष्ठी ने उसकी प्रतिष्ठा की तब जाकर वह मंदिर बनता है।

महानुभाव! इस शरीर को भी मंदिर बनाना है। यदि शरीर को भोगों में लगा दिया तो रोगों का घर बन जायेगा। वचनालाप का दुरुपयोग करें तो हो सकता है वचनशक्ति ही नष्ट हो जाये, गूंगापन आ जाये।

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो।

इस मनुष्य में मन ही ऐसा है जो बंध–मोक्ष का कारण है। यह इसे स्वर्ग भी ले जा सकता है और नरक भी ले जा सकता है। इसलिए मन को शुद्ध रखना है इस मन का सदुपयोग करना है। यह शरीर तो व्याधि का मंदिर है यह शरीर मंदिर कैसे बनेगा? यह मंदिर बनेगा, इसका निर्माण शुद्ध द्रव्य से करो। संकल्प कर लो मुख के अंदर कभी अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करूँगा, इस शरीर का पोषण कभी भी गंदे पदार्थों से नहीं करूँगा। मन को वेदी बनाना है और वह भी इतनी सुंदर बने कि आप ही अपनी वेदी पर रीझ जाओ। अत्यंत शुद्ध–विशुद्ध विचारों को

पढ़ो, नोट करो, पुनः आँख बंद करके मुहुर्मुहु चिंतन करो, प्राणी मात्र के कल्याण की भावना भाओ। हे भगवन्! मेरे पास यदि शक्ति हो तो मैं सभी के दुःखों को दूर करूँगा। विशुद्ध भावनायें जितनी उत्कृष्ट होती हैं वेदी उतनी ही अच्छी बन जाती है। जब आपका भाल उत्कृष्ट विचारों को अपने अंदर लाता है, तब यह भाल शिखर माना जाता है, जब आपका उपयोग ब्रह्मस्थान तक पहुँच जाता है तब समझो आपके तन के मंदिर में कलशारोहण हो गया। जब आपकी विशुद्ध ऊर्जा निकलती है तब समझो आपने अपने तन के मंदिर में ध्वजारोहण कर दिया। तन मंदिर बस यूँ ही नहीं बन जाता कि कुछ भी खाते रहो, इसके लिये तो शुद्ध–विशुद्ध भावनायें चाहिये।

सनतकुमार चक्रवर्ती का कामदेव सा सुंदर शरीर था, जिसे देखने देव भी आये किन्तु कुछ समय बाद वे कुष्ट रोगी हो गये। और एक शरीर ऐसा कि जन्म से अत्यंत घृणित, दुर्गंध युक्त किन्तु शुद्ध भावना रखने से, परोपकार करने से, भगवान् की भक्ति करने से इतना अच्छा हो गया कि शरीर से सहज ही सुगंध आने लगी। चाहे सुगंध इस तन की माटी से आये या न आये किन्तु इस शरीर से किये कृत्यों के माध्यम से स्वतः ही यश फैल जाना चाहिए।

यदि हमारे विचार शुद्ध हैं, वचन शुद्ध हैं, शरीर शुद्ध है परोपकार से युक्त है, भावनायें सर्वोदयी हैं तब हमारी आत्मा ही भावी परमात्मा बनकर के यहाँ विराजित हो जायेगी।

देह सफल सेवा किये, कर सफल शुभ दान,
तीर्थ वंदन पद सफल, शीश सफल परिणाम।।

देह की सफलता सेवा–उपकार करने से है, हाथों की सफलता दान देने से है, पैरों की सफलता तीर्थ वंदना करने से

है और परिणामों की शुद्धता से हमारा मस्तक सफल होता है। हमें हमारे सम्पूर्ण शरीर को सफल करना है और सफलता यही है कि हम इसका सम्यक् उपयोग करें तभी हम अपने तन को मंदिर बना सकते हैं। हम अपने तन को मंदिर बनाने की चेष्टा करें तब हमारी आत्मा निःसंदेह परमात्मा बन सकेगी। यही शाश्वत श्रेयोमार्ग है जिसके आप और हम पथिक बनें।
इन्हीं सद्भावनाओं के साथ........।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'श्री राम का आदर्शमय जीवन'

महानुभाव! आप लोग दर्पण के सामने खड़े होकर अपनी मुखाकृति को निहारते हैं, मुखावलोकन करते हैं। गर दर्पण मलिन हो तो उसमें अपना चेहरा देखना नहीं चाहते। यदि आपके समक्ष 50 दर्पण रखे हों तो आप उनमें देखेंगे कि सबसे स्वच्छ और सबसे बड़ा दर्पण कौन सा है। छोटे और गंदे दर्पण में कोई अपना चेहरा नहीं देखना चाहेगा। दर्पण जितना बड़ा होगा आपको भी अपना रूप उतना ही विराट दिखाई देगा, रूप उतना ही स्वच्छ दिखाई देगा। दर्पण हमारे रूप को दिखाने में एक निमित्त है। बिना दर्पण के हम अपने बाह्य रूप को देख नहीं सकते। शरीर के कुछ हिस्सों को देखा जा सकता है कुछ को नहीं। ऐसे ही हमें अंतरंग के हिस्सों (Inner Parts) को देखने के लिये एक ऐसे दर्पण की आवश्यकता है जिसके सम्मुख खड़े होकर हम अपने अंतरंग को निहार सकें। दर्पण को देखकर के अपने चेहरे पर लगे श्याम धब्बों को दूर किया जाता है। लोग चेहरे को सजाते हैं, चाहे कोई स्त्री आँखों में काजल लगाये, होठों पर लाली, मस्तक पर बिंदिया या बालों की सज्जा करे, चाहे कोई पुरुष अपनी मूछों को सेट करे या दाढ़ी बनाये सभी दर्पण को सामने रखते हैं। व्यक्ति दर्पण दर्पण को देखने के लिये नहीं अपितु दर्पण में स्वयं को देखने के लिये देखते हैं।

अंतरंग को देखने के लिये जिस दर्पण की आवश्यकता होती है वह दर्पण कहलाता है आदर्श पुरुष। जो आदर्श पुरुष हमारा आराध्य बने, जो आदर्श पुरुष हमारी दृष्टि में सम्पूर्ण हो, जो आदर्श पुरुष हमारे लिये शुद्ध–स्वच्छ व परमोत्कृष्ट हो, जिसमें देखकर के हम अपनी एक–एक बुराई को मिटाते जायें। जिसे हम आज तक अच्छाई मानते रहे वह बुराई आज तब दिखी जब उस आदर्श रूप महापुरुष में स्वयं का अवलोकन किया। अभी

तक अपनी बुराई को अच्छाई मानते आ रहे हैं कि मैं क्रोध करता हूँ तो सभी पर मेरा रोब रहता है, मैं इतने छलकपट से कार्य करता हूँ कि कोई पकड़ ही नहीं पाता, मैं उसे प्राप्त करके ही रहता हूँ जो मेरे मन में आये। मैं आज तक विषयों के सेवन को अच्छा मानता रहा, किसी से राग किसी से द्वेष ये सब मेरी दृष्टि में अच्छे लगते रहे किन्तु जिस महापुरुष के सामने आज मैं खड़ा हुआ तो मुझे लगा ये वीतरागी भगवान् जिन्होंने सब छोड़ दिया अब मुझे भी गलत को छोड़ देना चाहिए। यदि उस महापुरुष का आदर्श जीवन मेरे समक्ष नहीं होता तो मैं अपनी गलती को स्वीकार नहीं कर सकता था। व्यक्ति सोचता है संसार में सभी प्राणी तो ऐसा करते हैं मैं क्या कोई अकेला करता हूँ? किन्तु सभी प्राणी भले ही वैसा करते रहें किन्तु मैंने जिसको अपना आदर्श माना है उस आदर्श में मेरी यह विशेषता अच्छाई के रूप में नहीं बुराई के रूप में प्रदर्शित हो रही है। मुझे अपने आदर्श के समान बनना है इसीलिये मैं इन बुराईयों को छोड़ दूँगा। जब तक आदर्श आदर्शरूप न हो तब तक हम अपने जीवन को सुधार नहीं सकते।

आज ऐसे ही एक आदर्श महापुरुष के संबंध में चर्चा करते हैं। आदर्श कहलाता है कि हम अन्तरात्मा से उसके व्यक्तित्व को स्वीकार करें। उनके नाम की चादर ओढ़ने से उनके भक्त नहीं बनेंगे वरन् उनके कृत्यों को आदर देने से उनके भक्त कहलायेंगे। हमें उनकी मूर्ति को नहीं पकड़ना, उस व्यक्ति को नहीं पकड़ना, हमें उनके व्यक्तित्व को पकड़ना है। जब हम गुणों को पकड़ लेते हैं तो गुणीजन स्वतः पकड़ में आ जाते हैं। गुणों को छोड़कर यदि हम उन्हें पकड़ना चाहते हैं तो जैसे पारा फिसल जाता है ऐसे ही गुण भी फिसल जाते हैं। एक आदर्श जो सबकी दृष्टि में आदर्श है। यद्यपि अच्छाई सबके लिये अच्छाई होती है फिर

भी किसी आम्नाय से, सम्प्रदाय से, धर्म से बंधा व्यक्ति विद्वेष वश अच्छाई में भी बुराई ढूंढ सकता है।

एक आदर्श जीवन है—भगवान् राम का। राम का पवित्र जीवन जिनशासन में श्रद्धा—भक्ति के साथ स्मरण किया जाता है, बौद्ध सम्प्रदाय में निष्ठा के साथ स्मरण किया जाता है। हिन्दू सम्प्रदाय में कहा जाता है जिनका नाम लेने मात्र से असंख्यात पापों की हानि होती है, पुण्य का वर्धन होता है। यह कहा जा सकता है कि अधिकांश भारतीय नागरिक रामचंद्रजी को अपना भगवान् मानकर जी रहे हैं। जीयें क्यों नहीं, क्योंकि उनका जीवन ही ऐसा रहा, वे मर्यादा पुरुषोत्तम रहे।

जैन लोग तो कहते हैं राम में हमें ऋषभदेव से महावीर पर्यंत सभी तीर्थकरों का दर्शन होता है। कैसे? रामचन्द्र में ऋषभदेव की शासन प्रणाली दिखाई देती है। ऋषभदेव ने कैसे शासन किया था, क्या न्यायप्रियता थी, क्या सत्यवादिता थी, क्या परोपकार की भावना थी, किस प्रकार प्रजा को पुत्रवत् माना, स्वयं अपने सुखों का त्याग किया यहाँ तक कि अपने गृहस्थ धर्म का तो त्याग किया किन्तु मानव धर्म का परित्याग नहीं किया, राजधर्म का परित्याग नहीं किया। जो 19 तीर्थंकर जिनशासन में हुये उन्होंने राज्य किया ऐसा लगता है राम का 'र' अक्षर 19 तीर्थंकरों का प्रारंभिक जीवन बता रहा है और 'म' अक्षर बता रहा है कि महावीर स्वामी आदि पाँच तीर्थंकरों ने वन में जाकर कैसे तपस्या की, कैसे आध्यात्मिक वैभव को प्राप्त किया, वह राम के जीवन में प्राप्त होता है। रामचन्द्र जी ने भी संसार के सभी कार्य किये किन्तु मर्यादा से किये। उनके जीवन में अनुकूलता भी आयी, प्रतिकूलता भी आयी। अनुकूलता आने पर उन्होंने कभी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। अनुकूलता आने पर वे अपनी मर्यादा तोड़कर ऊपर नहीं गये और प्रतिकूलता आने पर अपनी मर्यादा के नीचे नहीं गये। दोनों तरफ से संतुलन बनाकर रखा।

व्यक्ति के जीवन में ज्यादा पुण्य का उदय आ जाये तो वह अपनी मर्यादा को पार कर जाता है और पाप का उदय आ जाये तो अपनी मर्यादा के नीचे चला जाता है। Top और Bottom दोनों पुण्य की मर्यादायें हैं कितनी भी अनुकूलता–प्रतिकूलता आ जाये हम इसे पार नहीं करेंगे। ऐसी हमारी Balance sheet होना चाहिये कि जीवन कभी भी किन्हीं भी परिस्थितियों में पलटे नहीं। भगवान् रामचन्द्र जी का जीवन ऐसा ही संयमित–मर्यादित एक आदर्श जीवन रहा। बाल्यअवस्था राजपुत्र की तरह व्यतीत हुयी किन्तु फिर भी शिक्षा प्राप्त करने गुरुकुल में पहुँचे। समस्त राजसुखों का त्याग करके गुरुकुल में जाकर उसी प्रकार उन्होंने प्रतिकूलता को स्वीकार किया जिस प्रकार अन्य विद्यार्थी सहन कर रहे थे। उन्होंने कभी ऐसा नहीं सोचा कि मैं राजघराने से हूँ तो मेरे लिये सभी सुख–सुविधा होनी चाहिये। गुरुकुल में तो वही क्रम था कि प्रातःकाल गुरु के जागने से पहले जागो, सफाई करो, लकड़ी लेकर के आओ, अन्य–अन्य कार्य करो फिर शिक्षा प्राप्त होगी। जो सिखाया है उसको याद करो। सभी विद्यार्थियों के लिये एक जैसा नियम था, वहाँ कभी भेदभाव नहीं होता। रामचन्द्र जी ने वह शिक्षा प्राप्त की क्योंकि प्रतिकूलता में जो शिक्षा प्राप्त की जाती है वह शिक्षा न प्रतिकूलता में छूटती है न अनुकूलता में छूटती है। जो शिक्षा अनुकूलता में प्राप्त होती है वह शिक्षा जब तक अनुकूलता रहती है तब तक तो रहती है किन्तु प्रतिकूलता आते ही बिखर जाती है और शिक्षा का फल न तो अनुकूलता में मिल पाता है न प्रतिकूलता में।

अदुःख भावितं ज्ञानं, क्षीयते दुःख सन्निधौ

इसीलिए प्रतिकूलताओं में उन्होंने जिन शिक्षाओं को प्राप्त किया वे प्रैक्टीकल थी। आज प्रैक्टीकल दूसरों पर कराया जाता है किसी पशु–पक्षी आदि को मारकाट कर। गुरुकुल में सभी शिक्षायें

दी जाती थी अस्त्र–शस्त्र, शास्त्र, वास्तु–ज्योतिष, मंत्र–योग साधना, आध्यात्मिक साधना आदि सभी शिक्षायें जिस शिष्य की जैसी पात्रता होती है उसकी पात्रता के अनुसार दी जाती थीं।

गुरुकुल के उपरांत उन्होंने गृहस्थ जीवन को स्वीकार किया। पिता की आज्ञा के अनुसार स्वयंवर में जो स्वयंवर की नीति–रीति थी उसका पालन करते हुए सीता को अपनी जीवन साथी के रूप में स्वीकार किया। पुनः अयोध्या आने पर उनके पिता ने विचार किया कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम अब राज्य संचालन के योग्य हो गया है यह राज्य भार उसे सौंप करके अपने कर्त्तव्य को पूर्ण कर संसार–शरीर–भोगों से विरक्त होकर आत्महित कर लेना चाहिये। यह सनातन रीति रही है।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

बाल्यअवस्था में सद्ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करना, यौवन अवस्था में माता–पिता की सेवा, वंश की वृद्धि करना एवं धर्म की वृद्धि करना और वृद्ध अवस्था आने पर संन्यास लेकर पुनः मुनिवृत्ति को धारण करना, अंत में योग साधना के माध्यम से, ध्यान–समाधि के माध्यम से अपने शरीर से निरीह होकर आयु का अवसान आने पर शरीर का परित्याग कर देना। इस प्रकार महाराज दशरथ सोच रहे थे किन्तु यह कर्म का फलदान समझो कि कैकया ने वरदान माँग लिया। उन्होंने भरत को राजगद्दी दी और रामचन्द्र जी वन को चले गये। साथ में लक्ष्मण व सीता जी भी गये। वैदिक परम्परा में लिखा है कि लक्ष्मण ने कहा भैया! आपके साथ अन्याय हुआ है, मैं शस्त्र उठाऊँगा, मैं न्याय दिलाऊँगा, राज्य आपको ही मिलना चाहिये। राम ने कहा लक्ष्मण तुम्हें क्या हो गया है? क्या तुम अपने पिता पर शस्त्र उठाओगे, भाईयों पर शस्त्र उठाओगे? क्या यही तुमने सीखा है? उस

सम्पत्ति के लिये अपनों पर वार करोगे, जिस सम्पत्ति को न कोई साथ में लाया है न ले जा सकता है। तुम क्या इतिहास रचना चाहते हो? क्या यही तुम्हारा आदर्श है कि भविष्य में लोग हमें ऐसे याद करें कि एक भाई ने दूसरे भाई पर एक पृथ्वी के टुकड़े के पीछे शस्त्र उठाया। लक्ष्मण ने राम के चरण पकड़ लिये भैया! मैं बहुत बड़ी गलती करने जा रहा था, आपने निःसंदेह मुझे पतित होने से बचा लिया।

महानुभाव! रामचन्द्र जी ने यही कहा कि हम जहाँ हैं वहाँ हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये। रामचन्द्र जी जंगली–पशु–पक्षियों के बीच वन में रहे किन्तु उन्होंने अपने आदर्श को खण्डित नहीं किया। वाल्मिकी जी ने राम का लक्षण बताते हुये रामायण में लिखा है।

न मांस राघवौ भुंक्ते, न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं, भक्त मश्नाति केवलम्।।

रामचन्द्र जी ने वन में सुलभ फल आदि का सेवन करके अपना समय व्यतीत किया, उन्होंनें कभी भी अभक्ष्य पदार्थ का सेवन नहीं किया। बुधजन कवि ने लिखा है–

"धर्मी के धर्म सदा मन में, रामचंद्र अरु
सीता रानी जाए बसे दंडक वन में।"

रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को समझाया कि लक्ष्मण! पिता जी ने हमें वनवास नहीं दिया अरण्य का राज्य दिया है उन्होंने हमारी समता देख यहाँ का व भरत की समता देख वहाँ का (अयोध्या) राज्य दिया है। रामचंद्र जी ने किसी भी समय भावनाओं में बहकर कोई ऐसा कृत्य नहीं किया जो उनके पद के प्रतिकूल रहा हो, मर्यादा के प्रतिकूल रहा हो, प्रत्येक समय उन्होंने अपनी मर्यादा का पालन किया। सीता का अपहरण होने के पश्चात् भी जब

घायल जटायु पक्षी सामने पड़ा है तब उसे करुणापूर्वक संबोधन दिया, उन्होंने यह नहीं सोचा कि मैं तो अपनी पत्नी के वियोग से दुःखी हो रहा हूँ, इसे यही छोड़ दूँ, मरता है तो मरने दो। नहीं! पहले उन्होंने उस पक्षी की रक्षा की, भाव से सेवा की। रामचन्द्र जी को जंगल में जब भी साधु संत मिले उन्होंने सदैव उनका सम्मान किया, उनकी पूजा–भक्ति की, समर्पित रहे। ऐसा महापुरुष कोई हजारों–लाखों वर्षों में विरला ही मिल पाता है। ध न्य है उनका जीवन चरित्र जिसका स्मरण करके भी पापों का क्षय होता है।

भरत जब राम को मनाने के लिये गये कि चलो भैया! यह राज्य आपका है, राम कहते हैं नहीं भरत! राज्य आपका है। दोनों में बहस होती है। राम ने कहा यदि मेरा भी है तब भी मैं तुम्हें देता हूँ। नहीं भाई राजगद्दी पर तो आप ही बैठेंगे। तब राम ने कहा भरत! क्या तुम ये चाहते हो कि पिता के वचन खण्डित हों उन्होनें तुम्हें राज्य दिया है यदि तुम सिहांसन पर नहीं बैठोगे तो उनके वचन खण्डित होंगे।

महानुभाव! ऐसे थे वे राम, जो भावनाओं में कभी नहीं बहे, कभी आकाश में नहीं उड़े तो कभी नीचे भी नहीं गये। राम का जीवन एक संयमित नदी की तरह से जहाँ से प्रारंभ हुआ वहाँ से बहकर महासागर तक की यात्रा कर निर्वाण सुख को प्राप्त किया। हम भगवान् रामचन्द्र जी के जीवन से कुछ अच्छी बातें सीखें व अपने जीवन को पवित्र–पावन बनायें, आदर्श बनायें इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.............।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘पराधीन सपने हु सुख नाहि’

महानुभाव! जो व्यक्ति विवेकहीन है, धनहीन है वह व्यक्ति दीन है और जो दीन है वही वास्तव में पराधीन है। जिस व्यक्ति को स्वयं के सत्व का बोध हो गया, स्वयं की पूर्णता का परिज्ञान हो गया, जिस व्यक्ति के लिये यह आभास हो गया कि मुझे जो कुछ चाहिये वह सब मेरे पास है उसे कोई गुलाम नहीं बना सकता। जिस व्यक्ति को यह पूर्ण विश्वास हो कि मेरा जो कुछ भी है उसे कोई छीन नहीं सकता, उस व्यक्ति को कोई दुःखी नहीं कर सकता है। व्यक्ति तब दुःखी होता है जब उसे भय होता है कि कोई मेरा मुझसे कुछ छीन लेगा। व्यक्ति उदास तब होता है जब सोचता है कि जो मेरा है वह मेरे पास नहीं है, दूसरे के पास है और उसे ग्रहण करने के लिये वह उसकी अधीनता स्वीकार करता है।

व्यक्ति बंधता है इच्छओं के साथ। वस्तु व्यक्ति को नहीं बाँधती, संसार में बहुत सारे पदार्थ हैं वह पदार्थ व्यक्ति को बाँध नहीं सकते, उन पदार्थों में लगा व्यक्ति का ममत्वभाव, मोह भाव, अपनत्व बुद्धि उस व्यक्ति को गुलाम बनाती है, वह उस व्यक्ति को बंधन में डालती है। बंधन किसी को अच्छा नहीं लगता, न बाहर का बंधन न अंदर का बंधन। जहाँ बंधन है वहीं तो क्रन्दन है और जहाँ बंधन नहीं उसका जीवन बाहर से चंदन है और अंदर से नंदन है। वह बाहर से भी चंदन सा महक रहा है और अंदर में भी नंदन वन सा महक रहा है। जो बंधन से रहित है, जिसके पास कोई बंधन नहीं, कोई इच्छा नहीं, आशा नहीं, कांक्षा नहीं उसको तो सारे जगत का वंदन है, सब उसकी वंदना करते हैं।

कान्ताकनकसूत्रेण, वेष्टितं सकलं जगत्।
तासु तेषु विरक्तौ यो, द्विभुजो परमेश्वरः।।

कान्ता (स्त्री) और कनक (स्वर्ण) ने संपूर्ण जगत को बांधा हुआ है। जगत् के समस्त प्राणी इनमें फँसे हुए हैं किन्तु जो उनसे विरक्त है वह दो भुजाओं वाला परमेश्वर है।

महानुभाव! प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मैं स्वतंत्रता में जीयूँ। व्यक्ति स्वतंत्र तो होना चाहता है परंतु तंत्र में जीना नहीं चाहता, स्व तंत्र के अनुसार जीये तो स्वतंत्र हो जाये। जब व्यक्ति अपने तंत्र में जीने में असमर्थ होता है तब उसे परतंत्र होना पड़ता है। जिस व्यक्ति की गाड़ी रोड़ पर दौड़ रही है वह कहता है मैं अपनी गाड़ी में किसी को बिठालूँगा भी नहीं और न मैं किसी की गाड़ी में बैठूँगा मैं अपने आपमें ठीक हूँ। जो अपनी गाड़ी को स्वयं संभाल नहीं पा रहा है वह कहेगा ड्राईवर रख लूँ या मेरी गाड़ी में बैठ जा। जब व्यक्ति स्वयं अच्छी ड्राईविंग कर सकता है तो फिर वह दूसरा ड्राईवर क्यों रखे, और ड्राइवर भी ऐसा जो घिसा पिटा हो, control नहीं कर पाये। ऐसे ही जब हम अपने जीवन को control कर सकते हैं तो हम अपने जीवन को दूसरों के हाथ का खिलौना क्यों बनायेंगे। दूसरा व्यक्ति हम पर शासन क्यों कर पायेगा। हम अपने शासन में जीयें, अपने तंत्र में जीयें। जब व्यक्ति अपने तंत्र में नहीं जी पाता है तब उसे परतंत्र होना पड़ता है, पराधीन होना पड़ता है।

अधीनता बिना आशा के प्राप्त नहीं होती और आशा तब जाग्रत होती है जब अपने मन में हीनता आ जाती है कि उसके पास ये सब है मेरे पास यह सब नहीं है। वस्तु का आकर्षण, वस्तु का मोह, विषयों का भोग, इच्छाओं के बंधन ही व्यक्ति को बांधते हैं व उसे पराधीन बनाते हैं, परतंत्र करते हैं। यदि इच्छाओं को कम करना प्रारंभ कर दें तो मुक्त होते चले जायेंगे। व्यक्ति वस्तुओं को छोड़ना चाहता है, इच्छाओं को कम करना नहीं चाहता यदि इच्छाओं को कम करता चला जाये तो वे बंधन, वे

रस्सियाँ अपने आप जलती चली जायेंगी। हम रस्सियों के उन गाँठ के छोरों को खोलते हैं जहाँ रस्सी बंधी है, अरे! तुम कोई पशु–पक्षी थोड़े ही हो, पशु को खूटे से खोल दिया और सोच लिया कि बंधन मुक्त हो गया। क्या फर्क पड़ता है पशु की रस्सी खूंटे से बंधी हो या किसी के हाथ में हो, पशु तो बंधन में ही है।

यह संसार उल्टा चल रहा है, अपने बंधनों को वहाँ से (खूंटे से)खोल रहा है। गाय को खूंटे से खोल दिया किन्तु रस्सा तो अभी भी बंधा है उसका रस्सा पैर के नीचे दब जाये तब भी गाय आगे बढ़ नहीं पाती, रस्सा गले में पड़ा है तो उसे कोई भी पकड़ सकता है। हमें रस्से को वहाँ से नहीं यहाँ से खोलना है, यहाँ से खोलने का नाम है स्वतंत्रता। वहाँ अर्थात् खूंटे से रस्सा खोलने का नाम है कि हम केवल बदली कर रहे हैं। जेल बदल रहे हैं, जेल बदलना स्वतंत्रता नहीं है, खेल बदलना स्वतंत्रता है। उस खेल को बदल दो जिस खेल के खेलने से जेल मिलती है। उस खेल को खेलना प्रारंभ कर दो जिसे खेलने से जेल से बाहर निकला जाता है। जेल में ऐसे कार्य करें जिससे मुक्ति मिल पाये। जेल में भी स्वतंत्रता का अनुभव करें।

महानुभाव! परतंत्रता बाहर से नहीं अंदर से आती है। इच्छाओं का दमन, उनका दहन करना है। हमारे कंठ में, हमारी आत्मा में बंधी हुयी रस्सियों को जलाना है। यदि रस्सियों को जला दिया जायेगा तो फिर कान पकड़कर हमें रस्सियों से कोई बांध नहीं पायेगा। इसीलिये भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं इच्छाओं को जलाओ, खूँटों को मत तोड़ो, अपने गले को मत काटो। गाय का गला काटने से गाय स्वतंत्र नहीं होगी, खूँटे को तोड़ने से गाय स्वतंत्र नहीं होगी, वह जिस रस्सी से बँधी है उस रस्सी को जला दो। खूँटे तो अनादिकाल से थे, हैं और कल भी रहेंगे

बस अपनी इच्छाओं की लगामों को जला दो, फिर चाहे संसार में कितने भी खूँटे हो कोई खूँटा आपको बांध नहीं पायेगा। रस्सी ही बांधती है खूँटा नहीं। खूँटे को गले से नहीं बांधा जा सकता, गला खूँटे से नहीं बंध सकता, रस्सी आवश्यक है ऐसे ही इच्छायें रस्सियाँ हैं। पराधीनता हमारी इच्छाओं से हमें मिलती है। हमने इच्छाओं को पैदा करके इन बेड़ियों को स्वयं पहन लिया है।

हमारी कामनायें, वासनायें, तृष्णायें, अभिलाषायें ही हमें बंधन पहनाती रहती हैं। जब इच्छा पैदा करते हैं तब हम समझते हैं कि ये स्वर्णाभूषण हैं बाद में मालूम चलता है ये स्वर्णाभूषण नहीं हैं ये तो लोहे की बेड़ियाँ हैं, जंजीरे हैं।

व्यक्ति इन्हें कैसे स्वीकारता है? जीवन साथी स्वीकार किया, घर बनाया, वाहन लाया, नौकर–चाकर लाया, धन–सम्पत्ति को जोड़ा उसने चारों तरफ से घेरा घेर लिया, बंध गया। जो–जो इच्छा थी उन सबकी पूर्ति करता गया, अपने बंधनों को मजबूत कर रहा है जैसे कोई व्यक्ति रस्सी को मजबूत करने के लिये तेल पिला रहा हो, जैसे लोहे की बेड़ियों को तपा–तपा कर ठोक–ठोक कर और मजबूती दे रहा हो। महानुभाव! इच्छाओं को बढ़ाना नहीं कम करना है। 'तनकारागृह', कब? जब तन के प्रति ममत्व भाव है–तब। यदि तन के प्रति निर्ममत्व भाव है, तब नहीं। जब तन से मात्र भोग भोगे जा रहे हैं, पाप किये जा रहे हैं तब तन कारागृह है, जब तन के माध्यम से कषायों का पोषण किया जा रहा है तब तन कारागृह है यदि तन से परोपकार किया जा रहा है, पुण्य कार्य किया जा रहा है, सेवा की जा रही है तो तन कारागृह नहीं है तब तो तन महल है, विमान है।

'वनिताबेड़ी' स्त्री के प्रति भोग की इच्छा है तो स्त्री बेड़ी है, स्त्री के प्रति सहयोग की भावना है तो वह बेड़ी नहीं अपितु

ऊपर चढने के लिये, आध्यात्मिक तत्त्व को प्राप्त करने के लिये सीढ़ी बन जायेगी। वनिता बेड़ी तब तक है जब तक चित्त में उस वनिता को भोगने की भावना है। और वनिता सीढ़ी है कब? जब उसके प्रति आध्यात्मिक चिंतन बन जाये कि यह भी एक आत्मा है मेरी भी एक आत्मा है, इसकी आत्मा बंधन से मुक्त हो, मेरी आत्मा भी बंधन से मुक्त हो। यदि मैं अपनी इच्छा के बंधन तोड़ दूँ, मैने जो रस्सी अपने व उसके गले में बांध दी जैसे दो बैल एक ही जुए में लगा दिये जाते हैं, अब दोनों रस्सी तोड़ दूँ तो वह भी स्वतंत्र और मैं भी स्वतंत्र।

महानुभाव! वासना बांधती है और वात्सल्य मुक्ति देता है। वात्सल्य कभी बांध नहीं सकता और वासना कभी मुक्त नहीं कर सकती। पराधीनता दुःखद है और स्वाधीनता सुखद है। पराधीनता कोई नहीं चाहता किन्तु वह इच्छाओं के बल से आती है। इच्छा का फल पराधीनता है और इन्द्रिय दमन का फल स्वाधीनता है। भगवान् महावीर स्वामी ने कहा किसी को बांधकर मत रखो 'जिओ और जीने दो'। स्वयं भी चैन से, आनंद से जिओ और दूसरों को भी पूर्ण आनंद के साथ जीने दो। दूसरों को सताने का भाव बंधन है, दूसरा मुझे दुःख दे सकता है यह भाव भी बंधन का भाव है। मेरा सुख–दुःख मेरे अंदर है, मैं गलत कृत्य करूँ तो घर भी मेरी जेल हो सकती है और मैं अच्छा कृत्य करूँ तो जेल भी मेरे लिये घर जैसा सुखद हो सकता है। बंधन से मुक्ति का उपाय कहीं दूसरों के पास नहीं हमारे ही पास है।

एक कैदी की जेल में सिपाही पिटाई कर रहे हैं, हाथों में बेड़ी पड़ी है क्योंकि वह अभी भी अशुभ वचन बोल रहा है, अभी भी शरीर से हिंसा की चेष्टा कर रहा, अभी भी उसके मन में क्रूर विचार आ रहे हैं। वहीं दूसरा व्यक्ति जिसे सिपाही पकड़ने के लिये आये उसने कहा–sorry sir मैंने ऐसा क्राइम

नहीं किया है, फिर भी यदि आपको मुझ पर संदेह है तो मैं आपके साथ चलता हूँ आप मेरे बारे में जाँच–पड़ताल कर लीजिये, आप संतुष्ट हो जायेंगे तब मुझे विश्वास है कि मैं बंधन मुक्त हो जाऊँगा। ऐसे व्यक्ति के साथ कोई मारपीट नहीं की जाती। वह वहाँ रहकर भी सेवा–परोपकार ही करता है उसे देख जेलर कहता है ये तो संतपुरुष है इसको जेल में क्यों रखा है, इसको बंधन में क्यों डाल रखा है? वह वहाँ रहकर भी आनंद का अनुभव कर रहा है। अपने कृत्यों से ही स्वतंत्रता का अनुभव होता है और अपने कृत्यों से ही पराधीनता–गुलामी का अनुभव होता है, बाहर से नहीं। बाहर के बंधन इतने दुःखद नहीं होते, बाहर की पराधीनता इतनी दुःखद नहीं होती।

कई बार व्यक्ति AC रूम में, डवलप के गद्दे पर सो रहा है तब भी मन में आर्त्त है दुःख है वह कहता है हे भगवान्! यह जीवन मेरे लिये भार है और दूसरा व्यक्ति जंगल में पड़ा है, भूखा–प्यासा है, आँख बंद करके परमात्मा का स्मरण कर रहा है, हे भगवान्! आज मेरा कितने पुण्य का उदय है कि आज मेरे अंतरंग में तुम्हारी स्मृति तो है, मुझे शरीर का, अन्य किसी का ख्याल नहीं आ रहा। हे परमात्मा! तूने ही मुझे बताया कि मेरी आत्मा भी तेरे ही बराबर है, तेरी जैसी ही है। मैं यदि संसार के समग्र पदार्थों से विरक्त हो जाऊँ तो मैं तुझ जैसा बन जाऊँगा। यह तेरा ही वरदान है मेरे ऊपर जो मेरी बुद्धि आज ऐसा काम कर रही है जिसके कारण मैं जंगल में रहकर भी आनंद का अनुभव कर रहा हूँ।

महानुभाव! मुक्ति का उपाय है पर पदार्थ से विरक्ति, अनासक्त भाव और बंधन का उपाय है पर में आसक्ति, लीनता। एक व्यक्ति कहीं चोरी करने गया, वह अपने पूरे गिरोह के साथ था। एक समय वह चोरी करके लौट रहा था, मार्ग में एक साधु

का आश्रम था, सोचा यहीं भोजन–पानी करें। वहाँ साधु बाबा साधना में रत थे, और वहीं एक तोता भी था, उस तोते ने उन्हें देखकर आईये–आईये कहकर सम्मान किया। तोता प्रतिदिन साधु के उपदेश सुनता था। उन चोरों ने उस तोते को चुरा लिया और अपने साथ ले आये। उस तोते का यहाँ मन नहीं लगा। वे चोर पुनः उसी आश्रम में गये, साधु ने पूछा तोता कैसा है? वे बोले–तोता दुःखी है यदि कोई संदेश हो तो कहिये। साधु ने कहा–तोते से कहना तू जहाँ है वहाँ ठीक से रहना। पुनः साधु ने पूछा कि क्या तोते ने कुछ कहा–वे बोले हाँ उसने पुछवाया है कि मुक्ति का उपाय क्या है? सुनते ही साधु महात्मा मूर्च्छा खाकर गिर पड़े। चोरों ने देखा–अरे! ऐसी क्या बात हुयी जो ये मर गये और चोर डरकर वहाँ से भाग गये, कहीं पुलिस हमें न पकड़ ले कि हमने साधु की हत्या कर दी।

चोर लौटकर अपने घर आये, तोते ने पूछा–कि क्या आपने मेरे गुरु से मेरा प्रश्न पूछा था? वे बोले अरे! क्या प्रश्न पूछा, न जाने तेरा प्रश्न कैसा था जिसे पूछते ही तुम्हारे गुरु तो मृत्यु को प्राप्त हो गए। तोता सुनकर सुन्न रह गया और सुनकर वह भी मर गया। चोर सोच में पड़ गये, ये क्या हो रहा है, यह कैसा प्रश्न है जिसे सुनकर यह भी मर गया। अब उन्होंने उस मरे तोते को बाहर निकालने के लिये पिंजरा खोला, पिंजरा खोलते ही तोता फुर से आकाश में उड़ गया और कहने लगा, मिल गया मुक्ति का उपाय। तुम भी करो स्वाध्याय तब ही मिलेगा मुक्ति का उपाय अर्थात् उपाय यही है कि उदासीन हो जाओ। जब तक इत आसीन रहेंगे, भोगों में, विषयों की वस्तुओं में आसीन रहेंगे तब तक मुक्ति का उपाय मिलने वाला नहीं। स्वाध्याय का आशय ग्रंथ पढ़ना नहीं है स्वाध्याय का आशय है अपनी आत्मा को अध्याय बनाओ उसे पढ़ो, उसमें क्या अच्छा है क्या बुरा है।

जैसे महिलायें जब चावल सोधती हैं तो कंकड़ फेंक देती हैं और चावल रख लेती हैं। ऐसे ही अपनी आत्मा को पढ़ो, लखो, बुराईयों को छोड़ो, अच्छाईयों को ग्रहण करते जाओ, इससे मुक्ति का उपाय अवश्य प्राप्त होता है।

महानुभाव! उदासीनता, वीतरागता और इच्छाओं को लगाम देना यही मुक्ति का उपाय है। बेलगाम इच्छायें संसार में भ्रमण कराती हैं, वे दुःखद ही हैं इसलिए उनसे बचो और स्वतंत्रता को प्राप्त करो। भगवान् महावीर स्वामी का सिद्धान्त याद करो 'जिओ और जीने दो' इसे अपने जीवन में जीवंत करो। इन्हीं शब्दों के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

‘आत्मविजय के सूत्र’

महानुभाव! प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मैं शत्रुविहीन जीवन जीयूँ। शत्रुओं के साथ जीवन सदैव दुःख संयुक्त होता है। क्योंकि शत्रु, शत्रु होता है वह अपना काम नहीं भी करे तब भी उसकी उपस्थिति अपने शत्रु के मन में भय, दुःख एवं नाना प्रकार के विकल्पों को जन्म देने में समर्थ होती है। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मेरे सभी जगह मित्र हों, चाहे वह जहाँ भी पहुँचे व्यक्ति उससे कहे कि मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मैं अपने प्राणों को दाँव पर लगाकर तुम्हारे प्राणों की रक्षा करुँगा, मैं तुम्हारे लिये मन से, तन से, धन से सब तरह से समर्पित हूँ। इस प्रकार का शब्द जब उसके कानों में आता है तब उसे बहुत आनंद की अनुभूति होती है। चाहे भले ही वे मित्र उसका साथ दें या न दें, चाहे भले ही उसे उन मित्रों की आवश्यकता पड़े या न पड़े किन्तु जब वे मित्र मैत्री की भाषा बोलते हैं और उसे विश्वास दिलाते हैं कि हम सब तुम्हारे साथ हैं तुम चिन्ता मत करो तब मित्रों का सद्भाव और मित्रों की भाषा व्यक्ति के अंतरंग में सुसुप्त और गुप्त पड़ी हुयी सकारात्मक ऊर्जा को संचालित करने में, उत्पन्न करने में और वृद्धि करने में समर्थ होती है।

इसके विपरीत शत्रु व्यक्ति के मन में दबे हुये दुःख को, संक्लेशता को, प्रतिकूलता को जाग्रत करते हैं तथा उसकी आंतरिक शक्ति का ह्रास करते हैं। जीवन में शत्रुओं की वृद्धि कमजोर व्यक्तियों को मारने के लिये पर्याप्त है चाहे वे शत्रु वार करें या न करें, बस उसे इतना अहसास हो जाये कि शत्रु तेरे चारों तरफ हैं, तूने कहीं भी कदम बढ़ाया तो तेरी मौत तेरे सिर पर नाच रही है। शत्रु चारों ओर हैं तेरी सम्पत्ति तेरी आँखों के सामने लुट जायेगी, शत्रु तेरे घर में आग लगा सकते हैं, तेरे

देखते–देखते तुझे बेरहमी से मार सकते हैं। भले ही वे वैसा न करें फिर भी उनका भय उसे अंतरंग से हिला देता है। और मित्रों का सद्भाव मित्रता की जड़ों को गहरा कर देता है और इतना साहस भर देता है कि अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं से टकराने की सामर्थ्य उसमें पैदा हो जाती है।

संसार के अधिकांश प्राणी तो बाहर के शत्रुओं को निर्मूलन करने में लगे हैं। ये मेरे प्रतिकूल है, जब देखो तब मुझे गिराने की सोचता है, मेरी बगावत करता है, मेरा विरोधी है, यह तो कभी मेरा होगा ही नहीं। अधिकांश लोगों का चिंतन यही चलता रहता है कि कौन–कौन मेरा विरोधी है, उनकी सूची प्रतिदिन शाम को सोने से पहले बना लेते हैं। हम ऐसा मानते है कि वे व्यक्ति अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं और वे मानते हैं कि शत्रुओं की सूची बनाकर हम सावधान हो जायेंगो। शत्रुओं का नामोल्लेख करके तो शत्रुता की वर्गणायें पैदा होती हैं और शक्ति का ह्रास होता है। ऐसे व्यक्ति रात्रि में सोने से पहले यदि अपने मित्रों का ख्याल कर लें, तो संभव है उनके जीवन में सकारात्मक ऊर्जा गुणोत्तर रूप से वृद्धि हो प्राप्त हो। खैर, फिर भी बाहर के शत्रुओं का लेखा–जोखा करने वाले व्यक्ति इस दुनिया में 99% से भी ज्यादा हैं और बाहर के मित्रों का लेखा–जोखा करने वाले व्यक्ति 1% से भी कम हैं।

किन्तु यहाँ हम बाहर के शत्रु–मित्र की बात नहीं कर रहे। जैन दर्शन कहता है जो आपके प्रति राग रखता है वह भी आपकी आत्मा का शत्रु हो सकता है और जो द्वेष रखता है वह भी शत्रु हो सकता है। जो आपकी आत्मा के प्रति द्वेष रखे वह भी मित्र हो सकता है, राग करे वह भी मित्र हो सकता है क्योंकि जिन–शासन के अनुसार शत्रुता–मित्रता बाहर वालों पर निर्भर नहीं है अपितु

अपने आत्मीय परिणामों पर निर्भर है। हम अपनी आत्मा के परिणामों को कैसे संभाल सकते हैं? आत्मा के परिणामों को किस प्रकार से नियंत्रण में रख सकते है? शरीर पर नियंत्रण रखना कथंचित् सरल है, वचनों पर नियंत्रण करना भी सरल है, मौन लेकर के बैठा जा सकता है, अंतरंग के जल्प भले ही चलते रहें किन्तु बहिरंग के जल्पों को रोका जा सकता है। मन के विचारों पर भी नियंत्रण करने के लिये मन को कोई नया विषय दे दो तो मन उसमें उलझ जायेगा पुराने विचारों से मुक्ति पाई जा सकती है किन्तु आत्मीय भावों पर नियंत्रण करना सहज साध्य नहीं है। संसारी प्राणी के लिये, भोगी प्राणी के लिये तो यह असंभव जैसा प्रतीत होता है।

महानुभाव! फिर भी यहाँ पर चर्चा करते हैं आत्म विजय के लिये। हम अपने अंतरंग शत्रुओं पर कैसे विजय प्राप्त करें? इसके कुछ सूत्र हैं, संभव है आपके काम आ सकें। वे सूत्र ऐसे हैं जिनके बिना आत्मविजय संभव ही नहीं है। उन आत्म सूत्रों के माध्यम से ही पूर्व में आत्मविजय प्राप्त की गई थी, आज कर रहे हैं व आगे करेंगे। वे पाँच सूत्र वैसे ही जानना आवश्यक है जिस प्रकार जीने के लिये प्राणवायु, जलपान, स्वास्थ्य और जीवन को रागान्वित करने वाला कोई मित्र आवश्यक है। आत्मविजय का प्रथम सूत्र है– **1. विवेक**

विवेको भेदविज्ञानं, देहदेहस्थयोर्ध्रुवम्।
विवेकः कथ्यते या च, सारासारज्ञता नृणाम्।।

शरीर और शरीर में रहने वाली आत्मा में जो भेदविज्ञान है, वह विवेक है तथा मनुष्यों का जो सारभूत एवं असारभूत का ज्ञान है वह भी विवेक है।

कार्य–अकार्य, हेय–उपादेय आदि का ज्ञान भी विवेक है।

जिस व्यक्ति का विवेक जाग्रत है उसे कोई व्यक्ति पराजित नहीं कर सकता। विवेक एक ऐसी दूरबीन है जिसके माध्यम से यह जाना जा सकता है कि कौन शत्रु है कौन मित्र। बिना विवेक के कई बार शत्रुओं को सम्मानित किया जाता है और मित्रों को निकाल दिया जाता है। विवेक के बिना व्यक्ति अपने हितकारी को दण्ड देता है और अहितकारी का सम्मान कर जाता है।

विवेक का आशय है हंसबुद्धि। आत्मा को हंस भी कहा जाता है। हंस का स्वभाव होता है नीर–क्षीर विवेकी। हंस के बारे में कहावत है–**हंसा मोती चुगे या भूखा मर जाय।** हंस स्वरूपी आत्मा जब विवेक से युक्त होती है तब अपने हित के लिये ही प्रवृत्ति करती है, अहित को स्वीकार नहीं करती किन्तु जब आत्मा अपने स्वभाव से च्युत होती है तो हंस स्वरूपी आत्मा कंस जैसी हो जाती है। कंस लोकव्यवहार में एक ऐसे अत्याचारी राजा का नाम है जिसने धर्मात्माओं को बहुत सताया और अपने स्वभाव जैसे दुष्ट व्यक्तियों को बहुत संरक्षण दिया व उन्हीं के बल पर बहुत समय तक अपना शासन करता रहा।

कंस का आशय है 'क' कहिये तो आत्मा 'स' कहिये तो उसका सर्वनाश करने वाला। जिसकी बुद्धि अपनी आत्मा का सर्वनाश करने वाली है। बुद्धि–विवेकहीन व्यक्ति कंस जैसी प्रवृत्ति वाला है। विवेकी व्यक्ति भी वही क्रिया कर रहा है, अविवेकी व्यक्ति भी वही क्रिया कर रहा है फिर भी उसी क्रिया से विवेकी व्यक्ति सुफल की प्राप्ति करता है व अविवेकी कुफल को प्राप्त करता है। उदाहरण के रूप में देखें तो एक विवेकी व्यक्ति भी आम खाता है और अविवेकी भी खाता है। विवेकी व्यक्ति पकने पर खा रहा है, जब आम मीठा होता है उसका मिष्ट रस मुख में आता है तो चेहरे पर चमक आ जाती है, रोम–रोम पुलकित हो

जाता है कहता है वाह! क्या आम का स्वाद है और वहीं अविवेकी व्यक्ति भी आम खा रहा है किन्तु जल्दबाजी कर रहा है, आम के पकने के पूर्व ही आम को तोड़ लिया व उसे खाता है, खट्टा आम खाते ही मुँह टेढ़ा–मेढ़ा करने लगता है।

विवेकी व्यक्ति उसी क्रिया को करते हुये पुण्य का आश्रव कर सकता है। उसने विवेकपूर्वक किसी वस्तु का त्याग किया, उपेक्षा भाव किया पुण्य का आश्रव कर लिया और अविवेकी व्यक्ति को वस्तु नहीं भी मिली तो उसे उसके प्रति आसक्ति रही लालसा रही जिससे वह पाप का आश्रव करता रहा। एक व्यक्ति को भोजन नहीं मिला, मिलने की संभावना भी नहीं है उसने कहा आज मेरे भोजन का त्याग, दूसरे व्यक्ति को भोजन नहीं मिलना है मालूम है फिर भी त्याग नहीं करेगा, कहेगा किसी से माँगकर, छीनकर, लूटकर खाऊँगा किंतु मिला फिर भी नहीं और वह दिन भर पाप करता रहा। जिसने त्याग किया था वह सोच रहा है आज मैं साधु जैसी प्रवृत्ति कर रहा हूँ मेरा सौभाग्य है आज मुझे उपवास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

'विवेक' वह है जिसके बारे में चाणक्य ने लिखा है–मेरे पास मेरी विवेक बुद्धि हमेशा ठीक रहे तो मैं एक अखण्ड भारत की स्थापना क्या, भारत जैसे दस देशों को मिलाकर मैं एक अखण्ड राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। और यदि मेरी विवेक बुद्धि नष्ट हो गयी तो मैं अपनी शरीर से भी समुचित कार्य नहीं कर सकता, मेरा शरीर ही मेरे लिये मेरा शत्रु बन सकता है। विवेक वह चीज है जिसके माध्यम से जीव हित–अहित की प्रवृत्ति कर सकता है। जिस प्रकार व्यापारी के लिये पूँजी आवश्यक होती है, योद्धा के लिये साहस और अस्त्र–शस्त्र आवश्यक होते हैं, नारी के लिये शील आवश्यक होता है, विदेश में विद्या–कला–हुनर आवश्यक

होते हैं, राजा के लिये सत्य और न्यायप्रियता आवश्यक होती है उसी प्रकार हित संप्राप्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति के लिये विवेक उतना ही आवश्यक होता है। इसलिये जीवन में नेक बनना है तो पहले विवेक को समक्ष रखना है। जिसके पास विवेक नहीं समझो वह नेक नहीं, और जो नेक नहीं समझो वह अनेक को एक नहीं कर सकता। द्वितीय सूत्र है–

2. **विनय**–विनय का अर्थ होता है "**विशेषेण नयतीति**"। जो विशेषरीत्या लेकर के जाए वह विनय है। अथवा विशेष स्थान पर विशेषगुणों की प्राप्ति हेतु, विशेषताओं के लिये या विशेष नम्रीभूत करने के लिये जो शक्ति उत्पन्न होती है उसे विनय कहते हैं। जैसे वृक्ष तब तक नहीं झुकते जब तक उन पर फल नहीं लगते। वृक्ष कितने भी लंबे होते चले जायें, पत्र आते चले जायें तब भी वह वृक्ष झुकता नहीं है पत्र भले ही झुक जायें, पुष्प आ जायें तो पुष्प भी झुकते नहीं हैं खिलते रहते हैं, फलों के लगने पर ही वृक्ष झुकता है। ऐसे ही व्यक्ति के अंदर जब तक फल न लगें तब तक संभव है वह भी औद्धत्यपने से युक्त हो सकता है, उद्दण्डी हो सकता है, कदाचारी भी हो सकता है, अपनी शक्ति–साहस–बल का दुरुपयोग करने वाला हो सकता है किन्तु जैसे ही उस पर गुण रूपी फल आना प्रारंभ होता है वह नम्र होता चला जाता है। ऐसा कोई वृक्ष संसार में खोज पाना मुश्किल है जो फलों से लदा हुआ हो और अकड़ करके ठूंठ की तरह खड़ा हो। फल लगेंगे तो वृक्ष को झुकना ही पड़ेगा, वह स्वतः ही झुक जायेगा। विनय ऐसा चुम्बक है जिसके माध्यम से तीनों लोकों में विद्यमान गुण उस व्यक्ति की ओर आकृष्ट हो आते हैं।

विद्या विवेक कौशल्यशमाद्याः प्रवरा गुणाः।
विनायासेन जायन्ते, विश्वे विनयशालिनाम्।।

विनय धारण करने वाले पुरुषों के विद्या, विवेक, कुशलता और उपशम आदि अनेक उत्तम गुण बिना ही परिश्रम के अपने आप आ जाते हैं।

विनय ऐसा गुण है जिसके माध्यम से व्यक्ति को गुणग्रहण की सामर्थ्य प्राप्त होती है और ये सिद्ध होता है कि व्यक्ति के अंदर गुणों का प्रादुर्भाव हो रहा है। विनम्र व्यक्ति कहीं से भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है। विनम्र व्यक्ति जमीन पर पड़े रत्न को ग्रहण कर सकता है क्योंकि उसके पास झुकने की कला है। झुका हुआ व्यक्ति ही गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

वैदिक परम्परा कहती है कि युद्धक्षेत्र में जब रावण की मृत्यु होने वाली थी तो रामचंद्र जी ने लक्ष्मण को रावण से शिक्षा लेने भेजा। लक्ष्मण रावण के सिर के पास जाकर खड़े हो गये और आकर बोले–भाई! रावण बहुत घमण्डी है उसने शिक्षा नहीं दी, राम ने पूछा–आप कहाँ खड़े थे? बोले सिर के पास। रामचंद्र जी ने कहा–जब कोई गुण ग्रहण करना होता है, शिक्षा ग्रहण करनी होती है तो चरणों में जाना पड़ता है, सिर पर नहीं। जिस शिष्य के शीश पर गुरु का हाथ है और जिस शिष्य का शीश गुरु के चरणों में है उस शिष्य को कोई संसार सागर में डुबा नहीं सकता, यदि ब्रह्मा भी चाहे तो भी डुबा नहीं सकता। अगला सूत्र है–

3. विनती–प्रभुपरमात्मा की विनती करने से, अपने आपको प्रभु परमात्मा से जोड़ने से अंतरंग में प्रकाश होता है। भक्त जिस क्षण अपने आपको प्रभु–परमात्मा से जोड़ता है उस क्षण उसके अंतरंग में प्रकाश हो जाता है जैसे स्विच ऑन करते ही विद्युत उपकरण बल्ब आदि जल जाते हैं या अन्य वस्तुयें क्रियान्वित हो जाती हैं ऐसे ही प्रभु परमात्मा से तार लगना चाहिये। दिन में 100–200 माला फेर ली और मन कहीं और जा रहा है तो वह सार्थक नहीं,

एक क्षण के लिये भी तार प्रभु से जुड़ गया तो आपके अंतरंग में प्रकाश हो जायेगा। विनती का आशय है प्रभु परमात्मा के साथ एकीकृत हो जाना, एकीभाव हो जाना। जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति, स्तुति, वंदना से भक्त के समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उनका नाम मात्र स्मरण सर्व मनोरथ पूर्ण करने वाला है, सर्व विघ्नों का नाश करने वाला है। जिनभक्ति की महिमा अचिन्त्य है।

यस्य चित्ते जिनेन्द्राणां, भक्तिः सन्तिष्ठते सदा।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि, तस्य नैवात्र संशयः।।

जिसके मन में सदा जिनेन्द्र देवों की भक्ति विद्यमान रहती है उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं इसमें संशय नहीं है।

विनती अर्थात् प्रभु परमात्मा के प्रति विशेष रूप से नति, प्रणाम, झुकाव। परमात्मा के प्रति तीव्र भक्ति। आप लोग बोलते भी है न ''जिसका पार्श्वनाथ से लगाव हो गया दूर जिंदगी से सब अभाव हो गया।'' यह सत्य है जिसका प्रभु परमात्मा के चरणों में लगाव हो गया है, उनके प्रति निश्छल भक्ति का सद्भाव हुआ है, भौतिक असीम वैभव की बात तो दूर वह आत्मा स्वयं परमात्मा बन जाता है। एक बार रशिया से हिन्दी अध्ययन दल भारत आया था। उस समय उसके अध्यक्ष थे–चेलिसेव। उन्होंने कहा था–''हम एशियन शरीर के इन्जीनियर हैं, हमने शरीर की सूक्ष्मतम चिकित्सा की और करते रहेंगे परंतु हमने शरीर में रहने वाली आत्मा के विषय में कभी नहीं सोचा, उसकी चिकित्सा नहीं की, वह विद्या नहीं सीखी; मैं भारत इसलिए आया हूँ कि इस विद्या को पा सकूँ। महानुभाव! आत्मा में अनादिकाल से जन्म–जरा–मृत्यु रोग विद्यमान है, आत्मा अनादिकाल से रोगी है। इस रोग को दूर करने की सर्वोत्तम औषधि है–जिन भक्ति। तभी तो भावना भायी–

भवन्तमित्यभिष्टुत्य, विष्टपातिगपौरुषम्।
त्वय्येव भक्तिमकृशां प्रार्थये नान्यदर्थये।।

लोकोत्तर सामर्थ्य से युक्त आपकी इस तरह स्तुति कर यही चाहता हूँ कि आप में मेरी विशाल भक्ति सदैव विद्यमान रहे, अन्य कुछ नहीं चाहता। पुनः सूत्र आता है–

4. विरक्ति–जब वह भक्त प्रभु से एकाकार हो जाता है तो संसार–शरीर–भोगों से विरक्त हो जाता है। संसार–शरीर–भोगों में आसक्त जीव प्रभु भक्ति, गुरु सेवा, स्वाध्याय आदि नहीं कर सकता। क्योंकि इनसे विरक्त होकर ही जीव समीचीन मार्ग वा धर्म पहचान सकता है एवं उसके अनुरूप आचरण कर सकता है। संसार–शरीर–भोगों में, पंचेन्द्रिय विषय में आसक्ति अत्यंत दुःख व अनन्त भव का कारण है।

भोगा रोगाधिका निन्द्या, विश्वानर्थनिबन्धनाः।
अतृप्तिजनकाः सर्पोपमा दुष्कर्मदायिनः।।

भोग रोग से अधिक निन्दनीय, सब अनर्थों के कारण हैं, अतृप्ति को करने वाले हैं, सर्प के समान हैं तथा दुष्कर्म के दायक हैं।

अतः ये भोगादिक सदैव त्याज्य हैं। अरे! मुनि नहीं तो मुनीम बन जाओ। आप लोग कहेंगे मुनि और मुनीम का Combination समझ नहीं आया। देखो! मुनि पूर्ण रूप से परिग्रह का त्याग कर विरक्त रहते हैं, निर्द्वन्द व निर्विकल्प रहते हैं। यदि ऐसी मुनि अवस्था को धारण नहीं कर सकते तो मुनीम के समान निरासक्त भाव से जीओ। जैसे मुनीम सेठ का पूरा हिसाब रखता है। एक ही दिन में लाखों रुपये उसके हाथ में आते भी हैं, लाखों रुपये उसके हाथ से निकलते भी हैं किन्तु उसे उनमें आसक्ति नहीं होती, वह जानता है यह सब सेठ जी का है। सेठ जी को करोड़ों का फायदा हो या नुकसान हो किन्तु मुनीम को उससे कोई

मतलब नहीं होता। जिस प्रकार वह मुनीम अपना कार्य निरासक्त भाव से करता है उसी प्रकार आप लोग भी अपने गृहकार्यों को निरासक्त भाव से संपन्न करो। धन चाहे कितना भी आए या जाए उसमें आसक्त मत होओ।

अयोध्या नगरी में विराजे प्रथम चक्रवर्ती सम्राट भरत जब समस्त भरत क्षेत्र–षट्खंडों पर राज्य कर रहे थे तब राज्य के किसी व्यक्ति ने सुना कि सम्राट भरत तो कीचड़ में रहने वाले उस कमल के समान वैभवादि से अलिप्त हैं। उसने सोचा एक सामान्य गृहस्थ तो निरासक्त भाव से अपना जीवन व्यतीत कर नहीं पाता तब एक सम्राट जिसके अधीन बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा हैं, जिसकी सेना में 18 करोड़ घोड़े, 84 लाख हाथी इत्यादि हैं, जिसके नव निधि व चौदह रत्न हैं, छियानवे हजार रानियाँ व अनुपम वैभव है, वह निरासक्त वा इनसे अलिप्त कैसे हो सकता है? अपनी इसी शंका को लेकर वह चक्रवर्ती सम्राट भरत के दरबार में उपस्थित हुआ। उसने कहा सम्राट! यह कैसे संभव है कि षट्खंडाधिपति होते हुए भी आप जल से भिन्न कमल के समान विरक्त रह सकें। तभी भरत चक्रवर्ती ने एक तेल से लबालब भरा कटोरा मंगाया और उस व्यक्ति के हाथों में दिलाते हुए कहा कि आपके प्रश्न का उत्तर हम बाद में देंगे पहले यह कटोरा लेकर आप पूरे महल में भ्रमण करें। आयुधशाला, रसोई ग्रह, अंतःपुर आदि का अवलोकन करके आएँ और हाँ याद रहे ये दो सैनिक नंगी तलवार लेकर तुम्हारे पीछे चलेंगे, यदि तेल की एक भी बूँद जमीन पर गिरी तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर देंगे।

जब तब सम्राट ने महल अवलोकन की बात कही थी तब तक तो वह व्यक्ति अत्यंत आह्लादित था, प्रसन्न था, उत्सुक था किन्तु आगे की बात सुनकर उसकी सारी प्रसन्नता भय में बदल

गई। किन्तु राजाज्ञा के समक्ष क्या कहता? उस कटोरे को लेकर धीमे–धीमे कदम रखते हुए संपूर्ण महल का चक्कर लगाकर सम्राट के सामने पुनः उपस्थित हुआ और शीघ्रता से वह कटोरा रख दिया। अब उसे चैन की श्वांस आई। चक्रवर्ती ने पूछा क्यों, सारा महल घूम लिया? बताओ कैसा लगा यह महल, मेरी रानियाँ क्या कर रही थी, आयुधशाला में चक्र कहाँ विराजमान था आदि प्रश्न किए। प्रश्नों को सुनकर वह व्यक्ति घबराते हुए बोला क्षमा करें महाराज मैं पूरे महल में घूमा जरूर था किन्तु मैंने कुछ भी नहीं देखा, ये तलवार लिए सैनिक जो मेरे पीछे थे। मेरी दृष्टि तो मात्र तेल के कटोरे पर थी कि कहीं कोई एक बूंद भूल से भी नीचे ना गिर जाए। इसके अतिरिक्त मेरा उपयोग और कहीं नहीं था।

भरत चक्रवर्ती मुस्कराते हुए बोले–आशा है तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। जिस प्रकार तुम्हें हर पल अपनी मृत्यु दृष्टिगोचर हो रही थी और तुम महल का आनंद नहीं ले पाए और न उसमें अभिरुचि ही रही उसी प्रकार मुझे प्रतिक्षण अपनी मृत्यु दृष्टिगोचर होती है, ना जाने कौन सा क्षण जीवन का अंतिम क्षण होगा अतः मुझे राज्य, वैभव आदि में रुचि मूर्च्छा वा आसक्ति नहीं। वह व्यक्ति चक्रवर्ती भरत के चरणों में प्रणाम करके कहता है, हे राजन्! आप धन्य हैं, आप महलों में भी वैरागी हैं, विरक्त हैं। महानुभाव! जो भरत चक्रवर्ती के समान गृहस्थाश्रम में भी विरक्त रह सकता है, निश्चित मानिए वह ही उनके समान अंतर्मुहूर्त में कर्म नाश कर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। देहादि में आसक्ति से रहित, विरक्त जीव ही वास्तव में ज्ञानी है। कहा भी है–

अमेध्यपूर्ण कृमिजालसंकुले, स्वभाव–दुर्गन्धकुपूति–पूरिते।
कलेवरे मूत्र–पुरीषभाजने, शठा रमन्ते विरमन्ति पण्डिताः।।

अपवित्र वस्तुओं से परिपूर्ण, कीटक समूह से व्याप्त, स्वभाव से

दुर्गन्धदायक, विकृत रुधिरादि से पूर्ण, मूत्र व पुरीष के पात्र शरीर में अज्ञानी जीव रमण करते हैं और ज्ञानी जीव उससे विरत होते हैं।

विरक्ति का आशय है राग–द्वेष की चिकनाई–स्निग्धता को दूर कर दिया, अब कर्मों की रज नहीं जमेगी। ये राग–द्वेष सैनिक हैं जो हमारी जेल में कभी शत्रुओं को पकड़कर लाते हैं तो कभी मित्रों को भी डाल देते हैं किन्तु जब हम दोनों से विरक्त हो जायेंगे तब न शत्रु से सरोकार न मित्र से सरोकार। यही विरक्ति वीतरागता का कारण है, हेतु है। विरक्ति के बिना वीतराग भाव की प्राप्ति संभव नहीं। अतः सदैव निरासक्त वा विरक्त भाव से रहो।

5. विशुद्धि–जब हम विरक्त भाव से जीते हैं तब आत्मा में विशुद्धि बढ़ती है। विशुद्धि की वृद्धि अर्थात् संक्लेशता या मलिनता की हानि हो गयी, पाप रज की हानि हो गयी। विरक्ति के बाद ही आत्मा संयम के जल से, रत्नत्रय के जल से स्नापित होती है और बीच–बीच में तप का साबुन लगाती जाती है फिर शुभ ध्यान के वस्त्र से प्रक्षालन करके यूँ कहिये शुक्लध्यान से स्वयं को संस्कारित करती है तब यह आत्मा परम शुद्ध होता है और शुक्ल ध्यान का अंतिम पाया पूर्ण होता है तब यह आत्मा सिद्ध बन जाती है। इस आत्मा को विशुद्धि के बाद ही सिद्धि की प्राप्ति होती है या कहें कि विशुद्धि से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस सिद्धि की प्राप्ति का नाम ही है–आत्मविजय।

महानुभाव! विवेक, विनय, विनती, विरक्ति पुनः विशुद्धि ये पाँच सूत्र आत्मविजयी होने के हैं। आप आत्मजयी बनें ऐसी हम आप सभी के प्रति मंगल भावना भाते हुये शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'चैतन्य गुण रत्नाकर'

महानुभाव! रत्नाकर का अर्थ है रत्नों का आकर अर्थात् समुद्र। जिसके ऊपर जल होता है नीचे रत्न। उसकी विशेषता होती है कि उसमें मल नहीं होता। समुद्र अपनी उत्तुंग लहरों के माध्यम से मल को उठाकर किनारों से भी दूर फेंक देता है। अन्य जलाशय मल को बाहर नहीं फेंकते, किनारे में भी वस्तु डालो तो वह मध्य में आ जाती है चाहे वह तालाब हो, नदी हो या झील। किन्तु समुद्र की यह विशेषता है कि यदि कोई मल बीच में भी डाल दो तो उसकी उत्तुंग लहरे उस मल को बहुत दूर कर देती हैं। रत्नाकर में बहुत रत्न छिपे रहते हैं और बाहर होता है स्वच्छ जल। जो जल के पास नहीं पहुँच पाते हैं, किनारे के इर्द–गिर्द घूमते रहते हैं उन्हें मिलता है कूड़ा–कचरा–मल। तालाब–नदी या झील में कुछ उल्टा होता है, उनमें अंदर होती है दलदल, ऊपर होता है जल, किनारे पर थोड़ा अच्छा जल होता है क्योंकि वहाँ नहाने से, डुबकी लगाने से काई थोड़ा आगे खिसक जाती है, वह अंदर चली जाती है।

यहाँ बात कर रहे हैं 'चैतन्य गुण रत्नाकर' की। यूँ तो रत्नाकर शब्द कहने से समुद्र का बोध हो जाता है। और वास्तव में उस रत्नाकर में अनादिकाल से अनेक रत्न विद्यमान हैं और उन रत्नों की थाह लेना भी मुश्किल है। समुद्र के जल की थाह लेना असंभव जैसा प्रतीत होता है फिर उस जल के भी नीचे कितना गहरा दल है। उसमें कितने रत्न भरे पड़े हैं उसकी थाह कौन ले सकता है। ऐसे ही 'चैतन्य रत्नाकर' अर्थात् जो चेतना शुद्ध है, अभी परमात्मा नहीं बनी किन्तु परमात्मा बनने के मार्ग पर अग्रसर है, महात्मा है, पुण्यात्मा है, धर्मात्मा है उसकी आत्मा की थाह लेना भी बड़ा मुश्किल है। फिर तो अरिहंत और सिद्धों

की आत्मा की थाह लेना तो असंभव ही है। अरिहंत, सिद्ध की आत्मा की थाह वही ले सकता है जो अरिहंत, सिद्ध बन गया है, अन्यथा नहीं। मेरी आत्मा चैतन्य गुणों की रत्नाकर कैसे बने? मेरी आत्मा में गुण रूप रत्न कैसे प्रकट हों? औदारिक शरीर को धारण करने वाली मेरी आत्मा कब परमौदारिक से युक्त हो और अंत में इससे भी रहित हो अर्थात्

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल, वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं अमल निकल परमातम, भोगें शर्म अनंता।।

उस अवस्था को मेरी आत्मा कब प्राप्त हो? चैतन्य गुणरत्नाकर बनने का रास्ता कहाँ से प्रारंभ होता है, वहीं stand या स्टेशन पर पहुँच जायेंगे? कौन सी सीढ़ी है जहाँ से हमारी आत्मा चैतन्य गुण रत्नाकर बन सकती है? कोई कहता है उसका रास्ता ध्यान करने से प्रारंभ होता है ध्यान लगाओ, कोई कहता है तपस्या करने से प्रारंभ होता है, कोई कहता है भक्ति करो, तो कोई कहता है ज्ञान की अग्नि जलाओ सभी कर्म उसमें नष्ट हो जायेंगे तुम चैतन्य गुण रत्नाकर बन जाओगे, सभी अलग–अलग बात कहते हैं। जो कोई इन सब कार्यों के करने में असमर्थ है और उसने पूर्व पुण्य से पर्याप्त से ज्यादा धन प्राप्त किया है तो वह कहता है भाई चैतन्य गुण रत्नाकर बनने का एक ही रास्ता है, दान। सब अपने अलग रास्ते बताते हैं, हम इन रास्तों से पूर्ण सहमत नहीं है।

हमारी दृष्टि में चैतन्य गुण रत्नाकर बनने का मार्ग प्रारंभ होता है सत्संगति से। सत्संगति के बिना आत्मा में एक भी गुण प्रकट नहीं हो सकता, यदि हो भी गया तो वह टिकेगा नहीं, नष्ट हो जायेगा। शाश्वत गुणों का प्रादुर्भाव जब भी होगा सत्संगति के माध्यम से ही होगा, कुसंगति में रहकर किसी भी आत्मा ने अपनी आत्मा का एक भी शाश्वत गुण प्रकट नहीं किया। यहाँ विशेष

गुण की बात कर रहे हैं। अस्तित्व–वस्तुत्व गुणों की चर्चा बाद में करेंगे, वे तो अनादिकाल से हैं ही उनकी यहाँ अपेक्षा नहीं।

आगम मे लिखा है कि क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति बिना केवली की संगति के नहीं होती। शास्त्रों में लिखा सम्यक्त्व की प्राप्ति जिनबिंब, परमेष्ठी व उनकी देशना के बिना नहीं होती।

मिथ्यात्वादिनगोत्तुङ्ग शृङ्गभङ्गाय कल्पितः।
विवेकः साधुसङ्गोत्थो वज्रादप्यजयो नृणाम्।।

सज्जनों की संगति से उत्पन्न हुआ विवेक, मनुष्यों के मिथ्यात्व आदि पर्वतों के उत्तुंग शिखरों को तोड़ने के लिए भी अजेय साधन माना गया है।

साधु आदि की संगति सत्संगति है इसके बिना सम्यक्त्व की भी प्राप्ति नहीं होती, सम्यक् श्रद्धा की प्राप्ति नहीं होती, बिना संगति के व्यक्ति मंदिर भी नहीं जाता। शायद ऐसा व्यक्ति खोजना मुश्किल है जो पहली बार अपने आप प्रभु परमात्मा के पास अकेला ही पहुँच गया हो, उसे कोई न कोई व्यक्ति अवश्य ही लाया होगा, माता–पिता होंगे या कहीं न कहीं कोई संगति उसके जीवन में अवश्य आई होगी। आप भी अपने पहले दिन को याद करो, आपको किसी न किसी ने प्रेरणा अवश्य दी होगी, आप बिना प्रेरणा के यहाँ नहीं पहुँचे होंगे। हो सकता है कोई पूर्व भव का संस्कार जाग्रत हुआ हो, उस पूर्व भव की अपेक्षा देखें तो उस समय भी उसने किसी सत्संगति से ही संस्कार प्राप्त किये होंगे। आज कोई व्यक्ति बिना किसी सहयोग के चला गया तो पहला कदम उसने पूर्व भव में रख लिया था, सत्संगति को पहले प्राप्त कर लिया था और अब उसका धर्म के क्षेत्र में प्रवेश करने का दूसरा कदम है।

सत्संगति के माध्यम से क्या प्रभाव पड़ता है छोटे से उदाहरण के माध्यम से आपको बताते हैं। एक ब्राह्मण पूर्व पाप कर्म के उदय से दरिद्र अवस्था से जूझ रहा था जैसे एक योद्धा युद्ध क्षेत्र में शत्रु से जूझता है, जैसे कोई शीलवती नारी अपने शील की रक्षा करने के लिये किसी दुष्ट से जूझती है, जैसे कोई मूर्ख बालक पढ़ने की जिज्ञासा से युक्त होकर अज्ञान भाव से जूझता है, जैसे कोई दीपक प्रकाश पाने के लिये अंधकार से जूझता है वैसे ही वह दरिद्र ब्राह्मण अपनी दरिद्रता से जूझ रहा था। वह सोच रहा था कैसे मैं अपना समयपूर्ण करूँ, उसे कोई रास्ता नहीं मिला तब उसके पास एक ही चारा बचा कि वह जंगल में जाये और अपने प्राणों को विसर्जित कर दे। वह जंगल में गया, वहाँ उसने देखा कि एक शेर बैठा है किन्तु अब उसे चिंता क्या, जब प्राणों का विसर्जन करने ही आया है तो फिर शेर से क्या डरना? जब जीवन में जीने की इच्छा ही नहीं रही तो कौन सा काम असंभव है। जिस व्यक्ति ने मृत्यु को स्वीकार कर लिया, मृत्यु को स्वीकार करने से पहले जितने भी संसार में खतरनाक से खतरनाक कार्य हैं उन सबको वह कर सकता है। वह शेर के पास भी जा सकता है, अग्नि के पास भी जा सकता है, समुद्र के पास भी जा सकता है, ज्यादा से ज्यादा क्या होगा? मृत्यु ही तो होगी। वह शेर के पास पहुँच गया। शेर ने कहा–अच्छा हुआ ब्राह्मण देवता आप मेरे पास आ गये, मैं बहुत दिनों से भूखा था अब तो आपका शिकार करके खाऊँगा। अपनी भाषा में घुर्राता हुआ वह शेर ऐसा कह रहा था।

वहीं गुफा के द्वार पर पेड़ की डाल पर एक हंस बैठा हुआ था। हंस ने अपनी भाषा में शेर से कहा–ठहरो! क्या तुम नहीं समझते हो। यह ब्राह्मण देवता है, क्रियाकाण्ड करने वाला है, शुद्ध व पवित्र हृदय वाला है, अपने प्राणों को विसर्जित कर

सकता है किन्तु ये आपको देखकर भागेगा नहीं। इस शुद्ध हृदय वाले को भक्षण नहीं करना, चाहे तुम भले ही भूखे रहकर अपने प्राण को तज देना। हंस की बातों का शेर पर बड़ा प्रभाव पड़ा। शेर ने कहा–तो तुम ही बताओ मैं क्या करूँ? हंस ने कहा–तुमने जो व्यक्तियों को मार–मार करके रत्न–आभूषण गुफा में छिपाकर रखे हैं उनको निकालकर इन ब्राह्मण देवता को दे दो इससे अच्छा मौका कब आयेगा। शेर ने अपने पंजों से गुफा को खोदा और जो रत्नाभूषण रखे थे वे ब्राह्मण को दे दिये। ब्राह्मण वहाँ से चला गया।

5–10 वर्ष व्यतीत हुये। ब्राह्मण को जितना धन मिला उसे उसने परोपकार में और अपने कार्य में लगा दिया। अब पुनः समय आया जब उसके पास कुछ भी नहीं बचा। मरता क्या न करता, सोचता है चलो उसी शेर के पास चलते हैं वही मेरी सहायता करेगा। शेर के पास पहुँचा, शेर ने उसे देखा तुरंत खड़ा हुआ अपना एक पंजा उठाया और उसे प्रणाम किया एवं अपनी भाषा में कहने लगा, आइये ब्राह्मण देवता! बहुत दिनों बाद आना हुआ। उस समय गुफा के द्वार के वृक्ष पर हंस नहीं कौआ बैठा हुआ था। तभी वह कौआ कहता है–सिंहराज! क्या देखते हो? क्या भूख के मारे अपने शरीर को यूँ ही छोड़ दोगे, सामने शिकार खड़ा हुआ है और तुम कुछ सोच रहे हो। शेर ने कहा मैं इसे नहीं मार सकता, ये तो ब्राह्मण है, शुद्ध क्रियाकाण्ड करने वाला, शुद्ध हृदय वाला है इसे मारना बड़ा पाप है। अरे! पापों की व्याख्या तो शास्त्रों में लिखी है, इस पर शीघ्रता से प्रहार करो और अपना पेट भरो। शेर ने मना किया कौआ दो–तीन बार पुनः बोला और कहने लगा तुम जैसे मूर्खों को कौन समझाये, मैं तो चला। कौआ सोच रहा था मैं शेर को उकसाऊँगा तो ये शिकार करेगा जिससे मेरा भी पेट भरेगा। उसने पुनः शेर को उकसाया

अबकी बार शेर ने दहाड़ लगायी और ब्राह्मण को मार दिया।

महानुभाव! सम्यक्त्व कौमुदी में यह वृत्तान्त दिया है। इसमें बताया गया कि जब शेर हंस की संगति में था तब शेर से वह पाप नहीं हुआ। शेर ने हंस की संगति पाकर के उस ब्राह्मण की सहायता की। जब शेर के पास कौआ बैठा था तो उसकी संगति से शेर के मन में यह भाव आ गया कि ब्राह्मण का घात करके अपने उदर की पूर्ति करना चाहिये। ऐसे ही आज जिस राजा के पास, जिस बॉस के पास, जिस अध्यक्ष के पास, मुखिया के पास हंस जैसी सलाह देने वाला अच्छा व्यक्ति है वह बहुत लोगों का हित व उपकार कर सकता और जिसके पास कौए की तरह से गलत सलाह देने वाला कोई व्यक्ति है तो वह बहुत बड़ा अहित करा सकता है। संगति का बहुत प्रभाव पड़ता है अच्छी संगति में रहकर परिणाम अच्छे होते हैं, बुरी संगति में रहकर परिणाम बुरे होते हैं। संगति निःसंदेह अपना प्रभाव छोड़ती ही है।

आप भी समझते हैं यदि कोई व्यक्ति भले ही गुस्से में चंदन का लेप आपके ऊपर फेंक दे, आप धूप में चलकर आ रहे हों तब भी आपके शरीर को शीतलता ही मिलती है और कोई व्यक्ति प्यार से भी आपके ऊपर तेजाब डाल दे तो शरीर को कष्ट ही होगा। चंदन ने अपना असर दिखाया, तेजाब ने अपना असर दिखाया। यदि कोई ट्रक आपके समीप से निकला जिसमें फूल भरे हैं, वह ट्रक रुका नहीं फिर भी नासिका सुगंधित हो गयी और यदि वहाँ से कोई माँस का ट्रक निकल रहा हो तो पूरा रोड़ बदबू से भर जाता है।

आप जानते हैं एक बार वीतरागी भगवान् का दर्शन मिल जाता है तो बालक भी निर्भीक होकर के भगवान् जैसी मुद्रा बनाने का प्रयास करता है। कदाचित् कोई बदमाश–डाकू व्यक्ति आ जाये या उसकी मूर्ति रखी हो तो एक क्षण के लिये अपना

शरीर भी काँप जाता है। 'काकाकालेलकर' ने लिखा कि जब वे भगवान् बाहुबली की मूर्ति के सामने पहुँचे तो वे स्वतः ही भगवान् के चरणों में साष्टांग लेट गये, प्रणाम किया और ऐसा लगा कि जीवन में मुझे पहली बार भगवान् पर विश्वास हुआ है, मैंने भगवान् की भगवत्ता से साक्षात्कार किया है। वीतरागी भगवान् के समक्ष तो डाकू भी प्रणाम करते हैं और डाकू के पास सज्जन व्यक्ति भी पहुँच जाये तो उसके परिणाम भी खराब होने लगते हैं।

महानुभाव! आप जानते हैं भोगी और योगी की संगति। भोगी की संगति भोग के लिये प्रेरणा देने वाली होती है तो योगी की संगति योग साधना के लिये संबल देने वाली होती है। जल और मल में मल मलिन करता है और जल मल का प्रक्षालन करता है। मल की संगति से शरीर, वस्त्र गंदा होता है और जल की संगति से स्वच्छ होता है।

एक बंगाली प्रसंग है—एक लड़की झोंपड़ी में बैठी थी, उसका पिता आया, पिता ने कहा—बेटा तूने अभी तक अपना दीया नहीं जलाया, बेटी! अपना दीया वार लो। बेटी ने कहा पिता जी आप भी तो वार लो। पिता को लगा बेटी ने कहा है कि मुझे अपने ज्ञान के दीपक को जला लेना चाहिये। मैं अज्ञानता में भटक रहा हूँ। लड़की ने कहा—आर बेला नाहीं। पिता ने भी कहा—आर बेला नाहीं अर्थात् आगे समय नहीं है। तो कब किसका अच्छा वाक्य हमारे हृदय को परिवर्तन करने में समर्थ हो सकता है यह हम स्वयं नहीं जानते।

महानुभाव! आप जानते हैं आचार्य गोवर्धनस्वामी हुये जिनकी संगति भद्रबाहु स्वामी जी ने की, उनकी संगति में आकर के वे साधु बन गये और अंतिम श्रुत केवली हुये। मुनि चंद्रगुप्त ने आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी जी की संगति की तो वह भी मुनि

बन गये। इधर चंद्रगुप्त के गुरुभाई भद्रबाहु स्वामी के ही शिष्य स्थूलभद्र, सोमिल्ल आदि थे, वे श्रावकों की संगति में चले गये तो दिगम्बरत्व से च्युत हो गये। आज भी साधु जब आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी के शास्त्रों की संगति करते हैं तो उनका आध्यात्मिक परिवेश बढ़ता चला जाता है। वही साधु आज यदि किसी श्रावक की संगति में उलझ जाते हैं तो बस वैसे ही फँस जाते हैं जैसे काँटे में मछली फँस गयी हो या जाल में शेर फँस गया हो। सत्संगति के माहात्म्य को प्रगट करते हुए कहा है–

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते, मा कामधुक् कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते, सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूते।।

कल्पवृक्ष संकल्पित वस्तु को ही देता है, वह प्रसिद्ध कामधेनु इच्छित वस्तु को ही पूर्ण करती है और चिन्तामणि चिन्तित वस्तु को ही देता है परन्तु सत्संगति समस्त वस्तुओं को देती है।

संगति का प्रभाव जीवन पर बहुत पड़ता है। विद्युच्चोर जंबूस्वामी की संगति से मुनि बन गये और ललितांग राजकुमार कुसंगति से अंजन चोर बन गया। अच्छी संगति जीवन में धारण करो, बुरी संगति से बचो। चैतन्यगुण रत्नाकर बनने का यदि कोई सूत्र है, तो वह है सत्संगति। वह आपके जीवन में आये, आपका जीवन मंगलमय बने। इन्हीं सद्भावनाओं के साथ.............।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'मंगलमय जीवन के चार सूत्र'

महानुभाव! आप और हम सभी चाहते हैं कि हमारा जीवन मंगलमय हो। जीवन मंगलमय बनाने के लिये हमें सिर्फ अपने आप को बदलना है। अमंगल बनाने के लिये बाह्य वस्तुओं का आलम्बन बहुत जरूरी है। अमंगलमय बनाने के लिये हम पर द्रव्यों के निमित्त से, पर के परिणामों को विकृत करके, पर की जीवन चर्या को बिगाड़कर के अमंगलमय बनाते हैं। अमंगल में 'अ' हम परनिमित्त से लगाते हैं। किसी के साथ झूठ बोलकर के, किसी को सता करके, किसी की चोरी करके, किसी के साथ रमण करके, किसी का धन हरण करके इन पाँच पापों के निमित्त से यह जीवन अमंगलमय बनता है। मंगलमय बनाने के लिये इन पाँचों को आत्मा से जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, इन्हें छोड़ दो तो जीवन मंगलमय स्वतः ही बन जायेगा। हिंसाभाव, असत्य, चौर्य, कुशीलसेवन व परिग्रह इनको छोड़ो, इनमें अनुरक्त मत होओ।

मंगलमय जीवन का आशय है अंतरंग में उत्कृष्ट आनंद आ जाना। जो उमंग–आनंद–उत्साह को लाये वह मंगल है। जो मं–गल अर्थात् अंतरंग के कुभावों को, मल को, गंदगी को दूर हटाये, गलाये, नष्ट करे वह मंगल है। मंगल दो प्रकार के होते हैं। यूँ तो आप सभी बाह्य क्रियाओं में मंगल करते हैं मंगल गृह प्रवेश, मंगल विवाह, मंगल कार्यक्रम इत्यादि किन्तु अब हमें जीवन को मंगल करना है। जीवन को मंगल करने के लिये जो जीवन की अमांगलिक क्रियायें, वार्तायें, भावनायें हैं, उन्हें बदलो। यदि अमंगल के हेतु जीवन में कहीं प्रवेश कर गये हैं तो पहले उन्हें निकालना है।

हमारा अमंगल होता है **शत्रुता** के माध्यम से। यदि हमने किसी को शत्रु मान लिया तो हमारा जीवन शत्रु रूप हो गया। हमारी आत्मा में शत्रु की धारणा का आ गई तो मान लो हमारा

जीवन अमंगल हो गया। अगला अमंगल का कारण है **संक्लेशता**। यदि संक्लेशता हमारे जीवन में है तो हमारा जीवन अमंगलमय बनेगा ही बनेगा। अगला अमंगल का कारण है–**क्रूरता** यदि हमारे परिणाम क्रूर हो रहे हैं तो हमारा जीवन अमंगल बन जाता है और चौथा अमंगल का कारण है राग और द्वेष। हमारे जीवन में जब तक राग–द्वेष है तब तक हमारा जीवन अमंगल ही बनेगा। इन चारों को छोड़ते ही चार गुण आत्मा में प्रकट हो जायेंगे। ये चार गुण रूप भावना सम्यग्दृष्टि भाता है।

जिस प्रकार ज्ञानावरण नष्ट करते ही अनंतज्ञान प्राप्त होता है, दर्शनावरण नष्ट करते ही अनंतदर्शन प्राप्त होता है, मोहनीय के नष्ट होने पर अनंत सुख की प्राप्ति होती है, अंतराय के नष्ट होने से अनंतवीर्य की प्राप्ति होती है, अंधकार के नष्ट होते ही जैसे प्रकाश आता है, दुःख के नष्ट होने पर सुख आता है, अज्ञानता का नाश होने पर ज्ञान आता है ऐसे ही इन चार दुर्भावों के नष्ट होने पर सुभावनाओं का जन्म होता है। चार दुर्भावनायें अमंगल की निमित्त हैं, स्तंभ हैं, प्रतीक हैं और चार शुभभावनायें जीवन को मंगल बनाने वाली होती हैं। ये चार भावनायें पर्याप्त हैं, तीन से काम चलेगा नहीं और पाँचवी किसी भावना की आवश्यकता नहीं है। हम ऐसा समझते हैं कि ये चार भावनायें चार अनुयोगों का सार हैं, वैदिक परम्परा के चार वेदों का सार हैं, किसी तीर्थयात्री के लिये चार धामों की यात्रा का सार हैं। ये चार भावनायें हमारे सम्पूर्ण जीवन को परिवर्तित कर देती हैं। वे भावनायें हैं–मैत्रीभावना, प्रमोदभावना, कारुण्यभावना और माध्यस्थभावना।

मैत्री भावना की आवश्यकता सर्वप्रथम अर्थात् बचपन से ही होती है। सबके प्रति मैत्री का भाव यदि जन्म ले गया तब निःसंदेह आपका जीवन बहुत महत्वपूर्ण हो गया। फिर जैसे ही

यौवन अवस्था में जाते हैं तब आप खुद को देखकर नहीं अपने से पूज्य पुरुषों को देखकर प्रमुदित हो जाईये। खुद की उपलब्धि पर खुश होना–प्रमुदित होना यह अहंकार हो सकता है किन्तु जिन्होंने उपलब्धि प्राप्त की है उन अपने से बड़े, पूज्य पुरुषों की उपलब्धि को देख प्रमुदित होना–आनंद आना यह बहुत बड़ी बात है। यौवन में प्रमोद भावना आना यह बहुत बड़ी बात है क्योंकि युवावस्था में प्रमोद भाव कम आ पाता है, अहंकार ज्यादा आता है। बाल्य अवस्था में मैत्री कम आ पाती है बैर विरोध ज्यादा आ जाता है। प्रौढ़ अवस्था में करुणा कम आती है, करुणा के स्थान पर संक्लेशता ज्यादा बनती है। घर–परिवार में झगड़ा होने पर, प्रतिकूलता होने पर करुणा कम आती है, संक्लेशता ज्यादा बनती है। और फिर वृद्ध अवस्था में माध्यस्थ भाव कम हो पाता है राग–द्वेष रहता है। जिसने मेरे लिये जिंदगी भर अच्छा–अच्छा किया वह मुझसे छूटे नहीं और जिसने मुझे जिंदगी भर परेशान किया उसे मैं छोड़ूँगा नहीं ऐसी विद्वेष भावना रहती है।

इसीलिये यदि जीवन सफल बनाना हो तो बाल्यअवस्था से मैत्री के संस्कार अनिवार्य रूप से होना चाहिये, यौवन अवस्था में प्रमोदभाव रखो किसी बात को ज्यादा मन पर मत लो, प्रौढ़ अवस्था में करुणा से भर जाओ सामने यदि कोई करुण दृश्य भी चल रहा है तो प्रौढ़ की आँखें गीली हो जाना चाहिये। यदि करुण दृश्य को देखकर बालक की आँखें गीली हो गयीं तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है किन्तु प्रौढ़ जिसने जीवन में बहुत बसंत देखे हैं और जीवन में बहुतों के अंत देखे हैं उनमें कारुण्य भाव होना चाहिये और वृद्ध अवस्था में जो मरते–मरते अपनी मुट्ठी भी नहीं खोल रहा है। एक मुट्ठी इसीलिये बाँधा है कि (यह राग की प्रतीक) इसे नहीं छोड़ूँगा और दूसरी मुट्ठी बांधा है कि (द्वेष का प्रतीक) मैं इसे नहीं छोड़ूँगा, वृद्ध अवस्था में माध्यस्थ भाव होना आवश्यक है।

मैत्री भावना–आचार्य भगवन् पूज्यपाद स्वामी जी ने सर्वार्थसिद्धि में लिखा है **''परेषां दुखानुत्पत्त्यभिलाषा मैत्री''** दूसरों के जीवन में दुःख उत्पन्न न हों ऐसी भावना भाना कि हे भगवन्! संसार का कोई भी जीव दुःखी न हो, सब प्राणी सुखी रहें, सबके दुःख नष्ट हो जायें, मैत्री है।

मा कार्षीत् कोऽपि पापानि मा च भूत कोऽपि दुःखितः।
मुच्यतां जगदप्येषा, मतिर्मैत्री निगद्यते।।

कोई प्राणी पाप न करे, कोई दुःखी न रहे, समस्त संसार मुक्ति को प्राप्त करे, ऐसी भावना मैत्री कहलाती है।

मैत्री भावना जिसके हृदय में है उसी के हृदय में ''वसुधैव कुटुंबकम्'' की भावना हो सकती है। वह बिना भेदभाव के विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति सुख की भावना भाता है। विश्व में चाहे पशु हों पक्षी हों व समस्त मानव, सभी के प्रति दया, करुणा, प्रेम की भावना रखता है। पशु–पक्षी भी राष्ट्र का ही हिस्सा हैं, उनको मारने वाला राष्ट्रप्रेमी होने का झूठा दंभ ही कर सकता है। सच्चा राष्ट्रप्रेमी वही है जो उस राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक जीव के प्रति वात्सल्य, मैत्री, करुणा का भाव रखे।

सम्राट अशोक द्वारा लिखाया गया एक शिलालेख गिरनार जी में है–इमें वियापटा होंति.......अर्थात् ''मैं आपके पूजा–पाठ कीर्तन को नहीं, मैत्री को पसंद करता हूँ।

वर्तमान काल में देखते हैं–

कोई मन–दुःखी, कोई तन दुःखी कोई धन दुःखी दीखे,
संसार में सुख सर्वदा काहू को ना दीखे।

किन्तु हम संसार के सब प्राणियों की सुख की भावना भा सकते हैं। संसार के सभी प्राणियों को सुखी कर पाना असंभव है, किन्तु एक उपाय है जिससे संसार के सभी प्राणियों को सुखी देख

सकते हैं वह है मैत्री भावना। हम अपनी भावनाओं से कल्पना कर सकते हैं कि संसार के सभी जीव सुखी हो गये अब कोई दुःखी नहीं है। आप मेरी भावना में पढ़ते हैं–

मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे,

आपसे कोई पूछे आपके मित्र कौन–कौन से हैं? सही कहें तो हमने आज तक किसी विशेष व्यक्ति को मित्र बनाया ही नहीं। तो क्या संसार में तुम्हारा कोई मित्र नहीं है? नहीं, ऐसा नहीं है। फिर? बात यह है कि मैं संसार के सब प्राणियों को अपना मित्र मानता हूँ। मैं केवल एक दो मित्रों के दुःखों को दूर करने की भावना नहीं अपितु संसार के प्रत्येक प्राणी के दुःखों को दूर करने की भावना रखता हूँ। यदि मैं संसार के किसी भी प्राणी का दुःख दूर कर दूँ तो वह मुझे अपना मित्र मानेगा और जब मैं संसार के सब प्राणियों के दुःख दूर करने की भावना भाता हूँ तो पूरा संसार ही मेरा मित्र हो गया। तो भावना ऐसी रखो कि कोई दुःखी न हो।

कई बार व्यक्ति दूसरों के दुःख में आनंदित होता है कि अच्छा हुआ उसका ऐसा–ऐसा बिगाड़ हो गया, घाटा हो गया। अरे भाई! ऐसा क्यों सोचते हो, कौन तुम्हारा शत्रु है? यह तो धारणा ही है कि तुम दूसरों को शत्रु मान रहे हो। तुम्हारा संसार में कोई शत्रु है ही नहीं सबको अपना मित्र मानो, सबके हित की कामना करो, भावना भाओ।

बचपन में कहानी पढ़ी थी शेर और चूहे की। चूहा सोते हुये शेर के पास पहुँच गया, और उसके ऊपर कूदने लगा। उसकी उछल–कूद से शेर की आँख खुल गयी, बोला अच्छा! इतना निर्भीक है कि मेरे ऊपर ही कबड्डी खेल रहा है। क्या सोचकर आया है, क्या तुझे अपने प्राण प्यारे नहीं है? चूहा बोला जो चाहे

करो किन्तु यदि मुझसे पूछकर करना है तो ठहरो। क्या मुझसे पूछने पर मेरी बात आप मान लोगे? पहले तो शेर हँसा, फिर बोला चल मान लूँगा, बता क्या कहता है? चूहा बोला मैं तो यही कहूँगा कि मुझे छोड़ दो। हो सकता है मैं कभी आपके काम आ जाऊँ। शेर जोर से हँसा–बोला–वाह! ये चूहा मेरे काम आयेगा। जैसे भिखारी राजा के काम आयेगा। चूहा बोला–आपने मुझे छोड़ने का वचन दिया है और मैंने आपके काम आने का। भविष्य तो हम दोनों से अपरिचित है।

संयोग की बात कुछ समय बाद शेर सोया हुआ था, एक शिकारी आया और शेर को जाल में फँसा लिया। शेर जगे उससे पहले उस जाल को खूब कस दिया जिससे वह बाहर न निकल सके। शेर उठा, उसने देखा कि मैं तो बंधन में हूँ। अब वह रोने लगा। **''जब आते हैं कर्मों के फेर, मकड़ी के जाले में फँस जाते हैं शेर।''** चूहे को ज्ञात हुआ कि जंगल का राजा जाल में फँस गया है। चूहा भागता हुआ आया बोला मित्र चिन्ता न करो। शिकारी तो जाल डाल कर चला गया जिससे तुम भूखे रहोगे और वह कल आकर पकड़ ले जायेगा, किन्तु मैं ऐसा होने नहीं दूँगा और चूहे ने जाल काट दिया।

कहने का अभिप्राय यह है कि बिना किसी स्वार्थ के सभी को एक–दूसरे की सहायता करनी चाहिये, यह कहलाता है मैत्री भाव। यदि मित्रता हो तो संसार में जीना अच्छा लगता है। शत्रुता के साथ एक क्षण का जीना भी अच्छा नहीं मित्रता के साथ मरना भी अच्छा है। मित्रता के साथ जीना भी अच्छा है और मरना भी अच्छा है।

महानुभाव! जीवन में मैत्री भाव का आशय यही समझें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** पूरी पृथ्वी मित्र के समान है, कुटुम्ब के समान है। अथवा भगवान् महावीर स्वामी का संदेश **'जीओ और जीने**

दो'। सम्राट अशोक ने शिलालेखों में लिखा है कि मुझे धर्म की अन्य क्रियायें इतनी अच्छी नहीं लगती कोई फूल–पत्ती चढ़ाकर पूजा कर रहा है, कोई फल–मिष्ठान्न चढ़ाकर पूजा कर रहा है जिसकी जैसी मनोभावना है वैसा कर रहा है किन्तु मैं तो ऐसा मानता हूँ कि जो मैत्री भावना है, जिओ और जीने दो का संदेश है यह मेरे अंतरंग को छू गया, संसार में इससे बड़ा धर्म और कोई नहीं है। अगला भावना है–

प्रमोदभावना–प्रमोदभावना का अर्थ होता है गुणीजनों को देखकर आनंदित होना, चेहरे पर प्रसन्नता आ जाये, किसी धर्मात्मा को देखकर हृदय प्रफुल्लित हो जाये तब समझना चाहिये निःसंदेह वह प्रमोदभावना से युक्त है।

वदनप्रसादादिभिरभित्यज्यमानांतर्भवितः रागः प्रमोदः।

मुख की प्रसन्नता आदि के द्वारा भीतर भक्ति अनुराग व्यक्त होना प्रमोद है।

दोषनिर्मुक्तवृत्तीनां धर्मसर्वस्वदर्शिनाम्।
योऽनुरागो गुणेषूच्चैः स प्रमोदः प्रकीर्त्यते।।

निर्दोष वृत्ति से सहित एवं धर्म का सार दिखाने वाले पुरुषों के गुणों पर जो अनुराग है वह प्रमोदभाव कहा जाता है।

'गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे' जैसे सावन के महीने में बादल घुमड़–घुमड़ कर आते हैं ऐसे ही धर्मात्मा को देखकर अंदर से प्रेम उमड़ता है। जैसे चन्द्रमा की कलायें बढ़ती देखकर के समुद्र में लहरे उठती हैं, जैसे माँ को देखकर पुत्र के मन में अनुराग उत्पन्न होता है, पुत्र को देखकर के माँ के मन में अनुराग उत्पन्न होता है ऐसे ही धर्मात्मा व्यक्ति को देखकर मन में प्रमुदितभाव होता है। धर्मात्मा व्यक्ति का कर्त्तव्य है–

'मुखप्रसन्नं' विमला च दृष्टि, गुणानुरागो मधुरा च वाणी'

मुख प्रसन्न हो, दृष्टि निर्मल हो, गुणों के प्रति अनुराग हो और उसकी वाणी मधुर हो इस प्रकार गुणों के प्रति जो ध्यान रखता है, गुणों की पूजा करता है तो जहाँ गुणों की पूजा होती है वहाँ स्वयमेव गुणी की पूजा हो जाती है। जैनदर्शन में गुणों की पूजा की गई है। मूलमंत्र नवकार में किसी का नाम नहीं है, गुणों को दृष्टि में रखकर ही नमस्कार किया गया है। जो गुणों की चर्चा करता है, गुणग्राहक दृष्टि रखता है, गुणी को देखकर आनंदित होता है और गुणों को ग्रहण करने की भावना रखता है समझना चाहिए कि वह निकट भविष्य में मोक्ष प्राप्त करेगा।

कभी व्यक्ति ईर्ष्यावश दूसरों के गुणों को सहन नहीं कर पाता और इससे उसका स्वयं का ही अहित हो जाता है। एक बार किसी नगर में एक सेठ ने किसी उत्सव में काव्य पाठ हेतु दो कवियों का निमंत्रण किया। दोनों की ट्रेन 1 घंटे के अंतराल में आ गयी। सेठ जी के भवन में ही उनके रहने की व्यवस्था थी। दोनों घर पर आए तो सेठ जी ने सबसे पहले उन्हें स्नानादि के लिए कहा। एक कवि पहले स्नान हेतु गया। तब दूसरे कवि से बात करते हुए सेठ जी ने कहा, ''आप अकेले थक जाते इसलिए आपका साथ देने के लिए दूसरा कवि भी बुला लिया है वह भी बहुत श्रेष्ठ है और उसकी आवाज का तो जवाब ही नहीं। यह सुनकर वह बोला–''सेठ जी! बुलाना ही था तो पूछ लेते, इस गधे को कहाँ से बुला लिया ये कुछ नहीं जानता। इतने में वह कवि स्नानादि कर आ गया और दूसरा कवि स्नान के लिए चला गया। बातों ही बातों मे सेठ जी पहले कवि से बोले, आपको अकेलापन महसूस न हो इसलिए आपके साथ के लिए एक और कवि आपके साथ है। वह बहुत अच्छा लिखता है, गाता भी अच्छा है। इतना सुनते ही वह अंदर ही अंदर ईर्ष्या से भर गया। वह बोला–'सेठ

जी! किसी और को बुला लेते तो अच्छा रहता वह तो बैल है बैल। इतनी ही देर में वह कवि भी तैयार होकर आ गया। दोनों नाश्ते के लिए बैठे। एक के सामने प्लेट में घास और दूसरे के सामने प्लेट में चारा आया। यह देखकर दोनों अत्यंत क्रोधित हुए बोले—ये क्या है? सेठ जी ने कहा क्षमा करना, मैंने तो आप दोनों को कवि समझकर दूसरा नाश्ता तैयार करवाया था किन्तु अभी कुछ देर पहले आप दोनों ने मुझे एक दूसरे का परिचय दिया। दोनों ने एक—दूसरे को बैल व गधा कहा तो उनके योग्य पदार्थ यहाँ रख दिया।

ये सुनकर वे दोनों बहुत शर्मिंदा हुए। महानुभाव! जब गुणी को देखकर उसके गुणों से ईर्ष्या करने की बजाय उसके गुणों की हृदय से प्रशंसा करनी आ जाए तब समझना अंतरंग में प्रमोद भाव का प्रादुर्भाव हो गया है और गुणों की प्रशंसा करने वाला स्वयं शीघ्र गुणी—गुणों का आकर बन जाता है। गुणी व्यक्ति तीनों लोकों में प्रशंसनीय होता है। अतः गुणग्राही बनो। अच्छे कार्यों में सदैव संलग्न रहो।

आप अपने नाम को मत चमकाओ अपने काम को चमकाओ। जिसका नाम चमकता है उसका नाम बदनाम भी हो सकता है जिसका काम चमकता है उसका नाम कैसा भी हो वह स्वयं चमक जाता है। तीसरी भावना है—

कारुण्यभावना—"दीनानुग्रहभावः कारुण्यं" दीनों पर दया का भाव करुणा है। जीवमात्र के प्रति दया का भाव वात्सल्य, करुणा है। दीन—दुखी जीवों को देखकर मन में करुणा का स्रोत फूट पड़े।

दीनेष्वार्त्तेषु भीतेषु, याचमानेषु जीवितम्।
प्रतीकारपरावृत्तिः, कारुण्यमभिधीयते।।

दीन–दुखी, भयभीत एवं जीवन की याचना करने वाले पुरुषों पर उनके दुःख निवृत्ति का जो भाव है वह कारुण्य भाव कहलाता है।

किसी के दुःखादि को देखकर स्वयं का हृदय द्रवित हो जाए वह वास्तव में करुणा है। 100–150 वर्ष पहले की बात है आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के गुरु आचार्य श्री सिद्धप्पा स्वामी किसी वृक्ष के नीचे ध्यान में लीन थे। तभी एक युवक उनका कमंडल चोरी करके ले गया। नगर के राजा तक बात पहुँची। राजा ने कहा हमारे राज्य में साधना करने वाले साधु का कमंडलु चोरी हुआ, यह बहुत नीच कृत्य है। राजा के आदेश से शीघ्र ही उस युवक को पकड़ लिया गया। कमंडलु तो महाराज श्री तक पहुँचा दिया गया अब उस युवक के दंड निर्धारण हेतु सभी मंत्री आदि राजदरबार में सलाह करने लगे। विभिन्न प्रकार के सजाओं के सुझाव आने लगे तब राजा ने कहा, ठहरिए। इसकी सजा वे ही निर्धारित करेंगे जिनका कमंडलु इस दुष्ट ने चुराया। आचार्य श्री से पूछा गया तब उन्होंने कहा यह मेरा कार्य नहीं है, किन्तु आप पूछ ही रहे हैं तो जो हम कहें वही करना। राजा ने कहा आप निश्चिंत रहिए मुनिराज। आपके कथनानुसार ही कार्य करेंगे। उन्होंने कहा ठीक है, तब इस युवक को एक रुपया दे दीजिए। यह जरूर अभावग्रस्त होगा अन्यथा यह चोरी नहीं करता। मुनिराज की इस करुणा दया को देखकर राजा, मंत्री आदि सभी लोग हतप्रभ रह गए। इसकी तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। युवक की आँखों से आँसू बहने लगे और उसने आजीवन चोरी का त्याग कर दिया।

इसी प्रकार एक बार चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के ऊपर कुछ बच्चों ने कंकड फेंके। और उन बच्चों को सजा देने के लिए आचार्य श्री से पूछा तो उन्होंने कहा–बच्चे हैं समीचीन मार्ग से भटक गए हैं, बच्चों को क्या चाहिए, बहुत

दरिद्र भी दिख रहे हैं, आचार्य श्री ने उन्हें वात्सल्यपूर्वक समझाया और सजा रूप में एक कमीज और एक टोपी उन्हें दिला दी।

राजाखेड़ा में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज पर हुआ उपसर्ग कौन नहीं जानता। कुछ युवाओं द्वारा किया गया वह भयंकर उपसर्ग आज भी जनजन के मानस पटल पर अंकित है। पुलिस ने उन्हें जेल में डाल दिया है और उनकी पिटाई कर रही है, जब यह समाचार आचार्य श्री को ज्ञात हुआ तो उन्होंने तब तक के लिए अन्न–जल का त्याग कर दिया जब तक उन्हें छोड़ा नहीं जाता। वास्तव में ऐसी करुणा ऐसे तपस्वियों के चित्त में ही उत्पन्न हो सकती है।

दीन–दुखियों को देखकर जिसके मन में करुणा का भाव नहीं जगा, आँखों में जल नहीं आया वे आँखे नहीं वे तो नारियल के दो छेद ही मानो और जिसकी आँखों में करुणा का जल छलकता दिखता है निःसंदेह वह धर्मात्मा की आँखें होती हैं।चौथी भावना है–

माध्यस्थ भावना अर्थात् **''रागद्वेषपूर्वकपक्षपाता भावो माध्यस्थं''।** राग द्वेष को पैदा करने वाले उस पक्षपात का अभाव हो जाना यह माध्यस्थ भाव है।

क्रूरकर्मसु निःशंकं, देवतागुरुनिन्दिषु।
आत्मशंसिषु योपेक्षा, तन्माध्यस्थ्यमुदीरितम्।।

क्रूर कर्म करने वाले, निःशंक होकर देव और गुरु की निंदा करने वाले तथा आत्मप्रशंसा करने वाले मनुष्यों पर जो उपेक्षा भाव है, वह माध्यस्थ्य भाव कहा है।

गाड़ी चलाने वाला व्यक्ति अपनी गाड़ी का Balance बनाते हुये बीच में से ले जाता है, नट का खेल दिखाने वाले नट जब रस्सी पर चलते हैं तो बांस से अपना Balance बनाते हैं ऐसे

ही हमें अपने जीवन का Balance बनाना है इधर गये तो द्वेष की दलदल है, उधर गये तो राग का जल है। राग के जल में व्यक्ति डूब जाता है तो दिखाई नहीं देता, द्वेष की दलदल में फँसा व्यक्ति दिखाई तो देता है किंतु उसका निकलना मुश्किल होता है। तो रागद्वेष दोनों ही खतरनाक हैं। माध्यस्थ भाव आत्मा पर जमी इस कर्मों की रज को दूर करने में समर्थ है।

आपके जीवन में यह चारों मैत्री, प्रमोद, कारुण्य व माध्यस्थ भाव प्रादुर्भूत हों ऐसी हम भावना भाते हैं व इन्हीं सद्भावनाओं के साथ......।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

जीयें तो किसके लिये?

महानुभाव! संसार में जितने भी प्राणी हैं वे अपना जीवन अपने–अपने तरीके से जीते हैं। जिसने जन्म लिया है वह मृत्यु को भी प्राप्त करता है। किन्तु संसार में कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनका जीवन महान् और आदर्श जीवन माना जाता है। कुछ प्राणी ऐसा भी जीवन जीते हैं कि उनका जीवन जीते जी भी उनके ऊपर भार बन जाता है और वे समाज के लिये भी कलंक या अभिशाप कहलाते हैं। जीवन प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना महत्वपूर्ण है उस जीवन का सही मूल्यांकन करना। लोग कहते हैं मनुष्य जन्म बहुत दुर्लभ है किन्तु हमारा मानना है कि मनुष्य जन्म से दुर्लभ है उस दुर्लभता को जान लेना कि वास्तव में मनुष्य जन्म कितना दुर्लभ है।

जीना है, कैसे जीना है? दूसरों पर भार बनकर के या दूसरों का आधार बनकर के? स्वयं पर बोझ बनकर के या स्व और पर के लिये बोध बनकर के? जीना है, खुद के लिये या खुदा के लिये? जीना है, इस पुद्‌गल के मृत वैभव के लिये या चेतना के शाश्वत गुणों के लिये? कहा जाता है जो दूसरों के लिये जीता है वह सदा ही जीता है, और जो खुद के लिये जीता है वह तो पानी से भरे फूटे घड़े की तरह से है जो सदा रहता रीता का रीता है। उसमें कितना भी पानी भर दिया जाये उस भरे हुये पानी का कोई महत्व नहीं है। जब कलश में छेद है, पेंदे में छेद है या पेंदा ही नहीं है तो उस कलश में कितना ही पानी डालते रहो क्या फर्क पड़ता है और हाँ यदि उस कलश में छेद नहीं है तो थोड़ा सा भी पानी डाल दोगे तो सार्थक हो जायेगा।

कोई व्यक्ति अपना जीवन जीता है धन कमाने के लिये, तो कोई व्यक्ति अपना जीवन जीता है प्राप्त किये धन को दूसरों पर

लुटाने के लिये, कोई अपना जीवन जीता है अपने तन को सजाने के लिये, तन को हृष्ट–पुष्ट बनाने के लिये तो कोई अपना जीवन जीता है इस तन से दूसरों के प्राण बचाने के लिये, दूसरे की रक्षा करने के लिये, दूसरों के प्राणों में जीवंतता का संचार करने के लिये। एक जीवन जी रहा है दूसरों से कुछ मिष्ट प्रशंसनीय वचनों को सुनने के लिये और एक जीवन जी रहा निर्वचनीय आनंद प्राप्त करने के लिये। एक व्यक्ति जीवन जीता है स्वजन के लिये दूसरा जीता है परजन व पुरजन के लिये, एक व्यक्ति जीवन जीता है ममता के लिये एक व्यक्ति जीवन जीता है समता के लिये, एक व्यक्ति का जीवन सपना सा है एक व्यक्ति का जीवन हर मानव के लिये अपना सा है। एक व्यक्ति जो जी रहा है वह संकल्प के साथ जी रहा है, दूसरा व्यक्ति जो जी रहा है वह अपने संकल्पों के साथ खिलवाड़ कर रहा है। एक किसी को मिटाने के लिये जी रहा है एक किसी को बचाने के लिये जी रहा है। एक व्यक्ति दीपक जलाने के लिये जी रहा है एक दीपक बुझाने के लिये जी रहा है। एक संस्कृति का रक्षण करने के लिये जी रहा है एक संस्कृति का भक्षण करने के लिये जी रहा है। एक असन और वसन में जी रहा है और एक व्यक्ति इससे परे निर्वसन अवस्था को प्राप्त करने के लिये जी रहा है। एक आत्म दर्शन के लिये जी रहा है एक प्रदर्शन के लिये जी रहा है, एक निष्ठा के साथ जी रहा है दूसरा बाह्य प्रतिष्ठा के लिये जी रहा है। एक सत्य के लिये जी रहा है दूसरा असत्य के लिये जी रहा है। एक व्यक्ति मानवता को बचाने के लिये जी रहा है, एक व्यक्ति मानवता को गिराने के लिये जी रहा है, एक व्यक्ति जी रहा है चींटी की तरह ऊपर चढ़ने का प्रयास करने के लिये दूसरा जी रहा है किसी चढ़ते की टांग खींचने के लिये। एक व्यक्ति इसलिये जीता है कि वह जीकर के सबके कर्ज उतार

सके दूसरा जी रहा है कर्ज बढ़ाने के लिये। एक को अपने जीवन में फर्ज अदा करना है एक अपने जीवन में कर्ज अदा कर रहा है। कोई व्यक्ति भगवान् से अपनी अर्जी लगा रहा है, एक व्यक्ति अपना काम फर्जी करा रहा है।

महानुभाव! यदि जीने में जीने का आनंद नहीं तो जीवन व्यर्थ है। आपने कोई मिठाई खाई उसका स्वाद आपकी रसना तक नहीं पहुँचा तो आप कहते हैं यह खाना न खाना एक बराबर है, ऐसे ही अपने जीवन से यदि दूसरों को जीने की प्रेरणा नहीं मिली तो ये जीवन ऐसा लगता है कि जीवन जीया नहीं, जीवन ढोया है।

अण्णोण्णुवयारेण य, जीवा वट्टंति पोग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण।।606।। गो. जी.

जीव परस्पर में उपकार करते हैं। जैसे सेवक स्वामी की हित सिद्धि में प्रवृत्त होता है और स्वामी सेवक को धनादि देकर संतुष्ट करता है। एक जीव दूसरे जीव की सेवा व उपकार करके ही जीवित रह सकता है।

महानुभाव! ऐसे कितने आदर्श महापुरुष हुये जिन्होंने अपना जीवन केवल अपने बाह्य भेष के लिये नहीं, केवल अपने घर, परिवार, संतान के लिये नहीं बल्कि किसी अच्छाई और सच्चाई के लिये जीया।

आपको पन्नाधाय का बलिदान याद होगा जिसने उदयसिंह की रक्षा करने के लिये उस स्थान पर अपने बेटे को रख दिया। उदयसिंह की सुरक्षा के लिए अपने बेटे का बलिदान दे दिया। उसने जीवन जीया, अपने बच्चे के लिये नहीं सच्चे के लिये, मारवाड़ की रक्षा के लिये। आपने जीवन में कई महान् पुरुषों के दृष्टान्त सुने होंगे। किन्तु आज व्यक्ति इतना सिकुड़ कर

जीता है कि लिबास ढीले हो जाते हैं किन्तु पहले व्यक्ति जीते थे तो लिबास की तो बात क्या विश्वास भी ढीला न हो पाये। पहले व्यक्ति विकास के लिये जीता था, आज व्यक्ति विनाश के लिये जीता है। जो विकास के लिये जीता है उसका विकास होता है, जो विनाश के लिये जीता है उसका विनाश होता है। आत्मविश्वास के साथ जीने वाला व्यक्ति दूसरों के अंदर आत्मविश्वास जगा सकता है। अपनी पिपासा को शान्त करना बड़ी सहज बात है किन्तु दूसरों की पिपासा को शांत करने के लिये अपने जल को दे देना यह बहुत बड़ी बात है।

जीवन में आनंद तब आता है जब जीवन से वह हासिल कर लिया जाये जिसके हासिल करते ही जीवन जीवंत हो जाये। दूध में घी न हो तो दूध व्यर्थ है, गन्ने में मिठास न हो तो गन्ना व्यर्थ है, पुष्प में खुशबू न हो तो पुष्प व्यर्थ है, नदी में पानी न हो तो नदी व्यर्थ है ऐसे ही जीवन में जीवंतता न हो तो जीवन व्यर्थ है। हम जीयें, किसके लिये जीयें? माननीय मोदी जी ने बचपन में पुस्तक में पढ़ा उसमें लिखा था हम किसके लिए जीते हैं, इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने कई लोगों से पूछा किन्तु आत्मसंतुष्टि जनक उत्तर नहीं मिला। जब उन्हें स्वयं अंदर से उत्तर मिला कि जीवन तो वास्तव में वही समृद्ध होता है, समर्थ होता है, पूर्ण होता है, बहुगुणा फल देने वाला होता है जो जीवन दूसरों के लिये जीया जाता है। कोई भी बीज भूमि में अपना सम्पूर्ण समर्पण करके बहुगुने फल या बीज देने में समर्थ होता है। जब तक वह बीज किसी डिब्बे में या बोरी में रखा रहेगा तब तक उसका अस्तित्व खतरे में रहेगा। बोरी में रखा हुआ अनाज का दाना रखा–रखा घुन सकता है यदि अपने लिये जी रहा है तो। यदि नहीं घुना तो भूना जा सकता है। भूनकर कोई खा सकता है या कहीं पिस सकता है किन्तु जब वह अपना जीवन बिना स्वार्थ के इस वसुधा

के लिये अर्पण कर देता है तब उसका जीवन अनेकों जीवनों को देने वाला होता है। ऐसे ही जो व्यक्ति अपना जीवन अपने देश के लिये जी रहे हैं, देश के लिये शहीद होने वाले, धर्म संस्कृति, सभ्यता की मान–मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं आज उनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है, आज उनका नाम लेने में भी गौरव का अनुभव होता है, आज उनका व्यक्तित्व जानकर ऐसा लगता है जैसे हमने किसी परमात्मा–महात्मा की पूजा कर ली। आज उनके जीवन का स्मरण आते ही लगता है वास्तव में वही जीवन, जीवन है और ऐसा जीवन जीने की अनेक व्यक्तियों की कामनायें बलवती होती हैं, जाग्रत होती हैं। तो जीवन तो वही जीना है जिस जीवन के साथ–साथ सारी मानवता जी उठे, जीवन तो वही जीना है जिस जीवन के माध्यम से अनेकों जीवन को बचाया जा सके।

ओलंपिक खेल के अंदर एक खिलाड़ी प्रथम स्थान पर आना संभावित था, उस विद्यार्थी से उसके स्कूल के अध्यापक, प्रधानाध्यापक, उसके साथी, उसके जानने वाले सभी आशा किये हुये थे कि निःसंदेह ये उत्तम खिलाड़ी है और ये ही प्रथम स्थान को प्राप्त करेगा। जल में नौका संचारण का कार्य प्रारंभ हुआ, वह आगे ही चल रहा था किन्तु उसने 'बचाओ–बचाओ' यह आवाज सुनी, आवाज सुनते ही पीछे मुड़कर देखा कि कोई पानी में डूब रहा है और सुरक्षा की याचना कर रहा है उस विद्यार्थी ने झट से छलांग लगायी और उसके प्राणों की रक्षा की। बाद में वह नियत स्थान पर पहुँचा। उसके अपने ही लोग उसे देखकर निराश हो रहे थे, इसने सबकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया, क्योंकि ये दौड़कर के वहाँ तक नहीं पहुँचा, ये तो प्रथम स्थान पर ही था। उसने कहा–मेरे लिये उस समय प्रथम स्थान प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना उस डूबते के प्राणों

को बचाना महत्त्वपूर्ण था। जो प्रथम स्थान पर आया था उसे बाह्य प्रथम पुरस्कार तो मिल गया, किन्तु पूरी जनता ने अपनी अन्तरात्मा से कहा जो प्राणी दूसरों के प्राणों को बचाने के लिये अपनी जीती बाजी को हार सकता है वह संसार में सबके दिल को जीत सकता है। बाहर की जीत इतनी पर्याप्त नहीं होती है किन्तु अंतरंग की जीत के लिये बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। बाहर की जीत जीतने वाले तो संसार में बहुत से पुरुष है जो अस्त्र–शस्त्र के बल से दूसरों के तन को जीतते हैं किन्तु मन को जीतने के लिये अस्त्र–शस्त्र की आवश्यकता नहीं, मन को जीतने के लिये शुद्ध हृदय से, निःस्वार्थ भावना से दूसरों का मन जीतने की भावना आवश्यक होती है। जब हित करने की भावना बलवती होती है तब निःसंदेह मन आनंद से भर जाता है। जैसे कुछ लोग कहते हैं हमें इतना आनंद खाने में नहीं आता जितना आनंद दूसरों को खिलाने में आता है।

लोगों को लगता है कि यदि मेरी सम्पत्ति किसी दूसरे के काम में लग गयी तो मेरा धन कमाना सार्थक हो गया और यदि किसी अच्छे काम में नहीं लगती तो हमारा धन कमाना व्यर्थ हो गया। यदि अपना कोई भी द्रव्य, कोई भी वस्तु यहाँ तक कि तन व अपने शुभ विचार भी किसी के काम आ जाएँ किसी के लिए प्रेरणादायक बन सकें, किसी के उत्थान में सहायक हो सकें तो उन सबका अपने पास होना सार्थक है। दूसरों की निःस्वार्थ भावना से की गई सहायता ही जीवन को आनंद से भरती है और उसे सार्थक बनाती है।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

'किया बेकार नहीं जाता'

महानुभाव! 'किया कभी बेकार नहीं जाता'। इस जीवन की ऊपजाऊ भूमि में जिस किसी प्रकार के कृत्य का बीज बोया जाता है वह जीवन में अवश्य ही फलीभूत होता है। जीवन की भूमि कभी भी, किसी भी काल में बंजर नहीं होती। इस जीवन की भूमि में बोया गया कृत्य का बीज कभी फलहीन नहीं होता। इस जीवन की भूमि को तीनों योगों के माध्यम से जोत कर उपजाऊ बनाया जाता है। इसमें कषायों का जल भी सिंचन किया जाता है, इसमें राग–द्वेष के माध्यम से प्रकाश और हवा भी दी जाती है फिर इस जीवन की भूमि में पड़ा हुआ बीज समय आने पर फल देने में समर्थ होता है। इस जीवन की लंबी दौड़ में इस जीवन की यात्रा में किसे क्या मिला, क्या नहीं मिला, किसने क्या पाया क्या खोया इसकी समीक्षा करने का ख्याल बहुत से लोगों को नहीं है। जो इस जीवन की तीव्र गति से चल रही दौड़/यात्रा में अपने साथ–साथ दूसरों का ख्याल रखते हैं वे निःसंदेह जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। मंजिल उनके समीप में खड़ी है जो दूसरों का ख्याल रखने में समर्थ है और मंजिल उनसे बहुत दूर चली जाती है जो प्रायःकर के अपने तुच्छ स्वार्थों की सिद्धी करने के लिये अपने जीवन को पापों से बांध लेते हैं।

यह जीवन का कलश मंगलकलश भी बनाया जा सकता है और विषकुंभ भी। यदि जीवन में सद्कार्य, श्रेष्ठकार्य, ६ ार्मकार्य किये तो जीवन का कलश मंगल कलश बन सकता है और जीवन को यदि बुराईयों से भर लिया, विषयों के सेवन से, बुरी आदतों से, व्यसनों से भर लिया तो ये जीवन का कलश विषकुंभ बन जायेगा। किया बेकार नहीं जाता, दिया बेकार नहीं जाता जिसने किया है उसे मिला है, जिसने बोया है उसने काटा

है। जिसने दिया जलाया है उसे प्रकाश मिलता है जिसने नहीं जलाया उसे नहीं मिलता। किसने क्या–क्या किया? मुनिराज पर्वत की चोटी पर तपस्या कर रहे थे शरीर से पसीना बह रहा था, धूल के कण चिपक रहे थे दूर से लग रहा था जैसे कुष्ठ रोग बह रहा हो, महाराज श्री कंठ ने मुनिराज को देखकर कह दिया था कि ये तो कुष्ठ रोगी जैसे दिखते हैं, ये उन्होंने दुष्कृत्य किया तो उन्होंने इसका फल भी प्राप्त किया वे भी कुष्ठ रोगी हो गये, उनके साथ उनके 700 सैनिकों ने करतल ध्वनि करके अपने राजा की अनुमोदना की तो वे 700 साथी कुष्ठ रोगी हुये।

यदि उन्होंने मुनिराज को अपशब्द कहे, गर्त में गिराया तो वे भी गर्त में गिराये गये, भांड़ों द्वारा उन्हें भी कहा गया कि तुम राजपुत्र नहीं भांड हो। यदि लक्ष्मीमति ने जिनमूर्ति को छिपाया तो लक्ष्मीमति को आगे अंजना की पर्याय में 22 वर्ष पति का वियोग सहन करना पड़ा। यदि वेगवति के जीव ने सुदर्शन–सुदर्शना मुनि–आर्यिका को देखकर के उनके प्रति कोई बुरा भाव रखा, कोई दोष लगाया तो सीता की पर्याय में उनके भी शील पर दोष लगाया गया।

'किया बेकार नहीं जाता' अब यह देखना है कि करना क्या है। इस अंधी दौड़ में कभी क्षणभर रुककर के उसका विचार करो जिसके माध्यम से आपका जीवन सफल हो सके, जीवन सही दिशा पा सके। दीपक जल रहा है जलते दीपक को एक लोहे के तार से सही करते रहेंगे तो उस पर जो कालिमा जम रही है वह निकलती जायेगी, ज्योति प्रज्ज्वलित होती जायेगी, बढ़ती चली जायेगी और यदि आलसी हो गये तो दीपक पर कालिमा जमती चली जायेगी, ज्योति अपना स्वच्छ प्रकाश पूर्णतः न दे पायेगी। अपने जीवन को संभालना है। जो लकड़हारा बीच में रुककर के अपनी कुल्हाड़ी की धार को नहीं देखता वह लकड़हारा कितना

भी परिश्रम कर ले किन्तु वह इतना फल प्राप्त नहीं कर सकता जितना फल वह लकड़हारा प्राप्त कर लेता है जो बार–बार अपनी कुल्हाड़ी को देख लेता है और धार दे देता है। अर्थात् जीवन में आप जो भी दौड़ लगा रहे हो, जिसे पाने के लिये दौड़ लगा रहे हो, इस मार्ग से तुम्हे वह मंजिल नहीं मिलेगी।

जैसे बैल को कोल्हू में चलते–चलते सुबह से शाम हो जाती है वह घूमता ही रहता है किसी मंजिल तक नहीं पहुँचता। ऐसे ही जो भोगों में डूबा हुआ है जो तुच्छ स्वार्थ के लिये कुछ भी करने को तैयार है, किसी का कितना ही अहित करने को तैयार है वह व्यक्ति अपनी मंजिल को प्राप्त नहीं कर सकता। किंतु जो एक बार रुक जाये, ठहर जाये फिर चलना प्रारंभ करे, मैं कहाँ से चला हूँ, कहाँ तक आ गया हूँ, आगे कहाँ जाना है सब ब्यौरा कर ले तो संभव है मंजिल प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति मानचित्र को जेब में रखकर दौड़ता रहता है वह अक्सर अपनी मंजिल से दूर ही पहुँच जाता है और जो बार–बार दिशा देखकर चलता है वह अपनी मंजिल तक पहुँच जाता है।

केवल श्वांस लेते मत रहो, श्वांस छोड़ना भी जरूरी है। श्वांस मात्र लेते ही जाओगे तो जी नहीं पाओगे, श्वांस को छोड़ पाओगे तो और श्वांस ले पाओगे। केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने में मत लगे रहो, कुछ परार्थ का भी ध्यान रखो, परमार्थ का भी ध्यान रखो। जो परमार्थ का ध्यान रखता है निःसंदेह वह परम अर्थ को प्राप्त करता है, जो परार्थ करता है अर्थात् परा यानि उत्कृष्ट अर्थ यानि प्रयोजन को सिद्ध करने वाला होता है। जो स्वार्थ में डूब जाता है अर्थ कहिये तो धन, धन ही जिसका प्रयोजन है, उसमें लगा रहता है तो वह न तो धन को प्राप्त कर पाता है और न स्व आत्मा के प्रयोजन को सिद्ध कर पाता है।

किसी गुरुकुल में अनेक विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उनकी शिक्षा पूर्णता की ओर थी, उनकी गुरुकुल से विदाई होने वाली थी। गुरु जी ने सभी विद्यार्थियों को आशीर्वाद दिया और कहा विदा होने के पहले मैं आपकी परीक्षा लेना चाहता हूँ। सभी को इस मानचित्र के अनुसार दौड़कर के चक्कर लगाकर आना है। गुरुजी उस स्थान पर पहले से पहुँच गये और यह भी निर्देश दिये कि रास्ता यही होना चाहिये किसी दूसरे रास्ते से आप नहीं जा सकते। जहाँ गुफा है वहाँ गुफा में से जाना, जहाँ सुरंग है वहाँ सुरंग में से जाना, नदी पर कोई लकड़ी पड़ी है उस लकड़ी पर से ही गुजरना है, आप रास्ता बदल नहीं सकते। देखते हैं कौन कब लौटकर के आता है, कौन प्रथम आता है, कौन अंत में आता है।

सभी विद्यार्थियों ने गुरुजी के निर्देश के अनुसार चलना प्रारंभ किया, वे दौड़ते गये दौड़ते गये, प्रायःकर जो अव्वल थे, कुशल–पराक्रमी थे, गंभीर थे, निर्भीक थे वे दौड़ में आगे–आगे आ रहे थे कुछ विद्यार्थी पीछे भी आ रहे थे। गुफाओं–सुरंगों से निकलकर आना था, मार्ग कंकर–पत्थर से भरा था, अंधेरा भी था, वे जल्दी पहुँचने के कारण शीघ्रता से दौड़कर आ रहे थे पैर में कंकड़ चुभ रहे थे फिर भी उसकी परवाह न करते हुये वे बढ़ते चले गये। उनमें आगे पहुँचने वाला विद्यार्थी जो सबसे आगे तो नहीं था किंतु सबसे पीछे भी नहीं। उसने सोचा प्रकाश में दौड़ते समय तो सभी अपनी सुरक्षा करने में समर्थ थे इस अंधकार में मेरा पैर भी लहु–लुहान हो रहा है। मुझसे पीछे अभी बहुत से विद्यार्थी दौड़कर आ रहे हैं उनके पैर में भी ये कंकड़ चुभेंगे। इस अंधकार में इन कंकड़ो को कहाँ side में करूँ, कोई कहीं से भी आ सकता है इसलिए हाथ से टटोल कर उन कंकड़ों को एक झोले में डालता गया और इस कार्य में लगा रहा कि इतने में अन्य विद्यार्थी भी गुफा से दौड़ते–दौड़ते आगे निकल

गये। जहाँ गुरुजी पहले से पहुँचे हुये थे उस नियत स्थान पर सभी विद्यार्थी आ गये।

गुरुजी ने विद्यार्थियों की गिनती की तो एक विद्यार्थी कम था पीछे मुड़कर देखा तो वह विद्यार्थी आ रहा था। उससे पूछा आप इतनी देरी से कैसे आये? वह बोला गुरुजी सुरंग में थोड़ा अंधेरा था, कंकड़–पत्थर बहुत थे उन कंकड़–पत्थरों की वजह से मुझे देर हो गयी। पुनः पूछा ऐसे कैसे देर हो गयी? गुरुजी! अपराध क्षमा हो वे कंकड़ सबको चुभ रहे थे, जो मुझसे आगे निकल गये उनके पैर में कंकड़ चुभ गये मैं कुछ कर नहीं सकता था किन्तु मैं इतना तो कर ही सकता था कि जो मुझसे पीछे दौड़कर आने वाले हैं उनके पैर में कंकड़ न चुभें, इसलिये मैंने कंकड़ों को बटोरना शुरू किया और झोले में भर लिया अब मैं उन्हें उस स्थान पर डाल दूँगा जहाँ से वे कंकड़ लोगों के पैरों में चुभे नहीं।

गुरुजी ने कहा तुमने ऐसा क्यों किया? गुरुजी! आपने ही तो सिखाया था कि इस प्रतियोगिता में जीतना इतना जरूरी नहीं है जितना महत्वपूर्ण है मानवता की प्रतियोगिता में जीतना। यह वाक्य मुझे याद था इसलिये यदि आज की प्रतियोगिता में मैं पराजित भी होता हूँ तो मुझे कोई हर्ज नहीं, किन्तु मुझे ये खुशी है कि मैंने मानवता के लिये कोई एक कार्य तो अपने हाथों से किया। चाहे भले ही मैं अंत में ही आया। गुरुजी ने कहा अपना झोला दिखाओ, मैं भी तो देखूँ वे कंकड़–पत्थर कैसे हैं। गुरुजी ने जैसे ही झोला खोला तो देखा उसमें रत्न भरे थे। गुरुजी ने कहा जो दूसरों का ध्यान रखता है उसे सब कुछ मिल जाता है, जो अपना ध्यान रखता है उसे कुछ नहीं मिलता है। तुमने दूसरों का ध्यान रखा ये कंकड़ पत्थर नही हीरे व रत्न हैं इस पर तुम्हारा ही अधिकार है तुम इन्हें ले जा सकते हो।

महानुभाव! यह किस गुरुकुल की बात है, किस गुरु ने इस प्रकार की परीक्षा ली मुझे ज्ञात नहीं, मैंने उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं किया किन्तु इस कथ्य में तथ्य जरूर छिपा हुआ है उस तथ्य तक हम आपको पहुँचाना चाहते हैं कि जीवन में जब भी आगे बढ़ो, कोई भी कदम आगे बढ़ाओ तो एक कदम बढ़ाते समय थोड़ा ठहर कर यह सोच लेना कि अगला कदम बढ़ाने से दूसरे का उपकार जल्दी होगा या कदम रोकने से। दूसरे के उपकार का ख्याल कदम–कदम पर रखेंगे तो निःसंदेह प्रकृति दूसरे का उपकार करने वाले का उपकार जरूर करती है। 'किया बेकार नहीं जाता'। ये दुनिया तो ईको साउण्ड है, ध्वनि की प्रतिध्वनि आती है। कुयें में जैसी आवाज लगाओगे लौटकर वहीं आवाज आयेगी। यह दुनिया ऐसी ही थी, ऐसी ही है और हमेशा ऐसी ही रहेगी यह नहीं बदलेगी। हम दुनिया को बदलने की चेष्टा न करें, हम अपने आपको बदलने का प्रयास करें। अपने आपको बदलने का प्रयास संसार का सबसे बड़ा प्रयास है।

जंगल में एक शाखा पर बैठे कबूतर और कबूतरी भावना भा रहे थे–हे प्रभु! तुम्हारी लीला तो तुम ही जानो, क्या आपकी कृपादृष्टि है प्राणी मात्र के प्रति, संसार के सब प्राणी सुखी रहें, सभी आनंद का अनुभव करें, तभी उन्होंने देखा कि एक शिकारी तीर तानकर खड़ा है और दोनों को एक साथ ही निशाना बनाना चाह रहा है। कबूतरी ने कबूतर से कहा अब हमारा जीवन ज्यादा समय का शेष नहीं, जो प्रभु–परमात्मा को मंजूर हो वही हो, हम पुनः प्रभु भक्ति में लग जाते हैं और भावना भाते हैं। यूँ तो सभी को एक दिन मरना ही है मरते समय भी हम यही भावना भाते हैं कि सबका मंगल हो, शुभ हो, अच्छा हो। और वे दोनों आँख बंद करके प्रभु चरणों में स्वयं को समर्पित कर देते हैं। तभी कुछ आवाज हुई, उन्होंने देखा कि ऊपर से अचानक बाज पक्षी उन पर झपट्टा मारने को तैयार है। नीचे देखा कि

एक सर्प निकलकर आया यदि वह एक फुंकार भी दे दे घोंसले पर तो वहीं दोनों की मृत्यु हो जाये। किन्तु वे दोनों अभी भी प्रभु परमात्मा के चरणों में स्वयं को समर्पित किये हुये हैं और निःसंदेह निर्भीक हैं। प्रार्थना कर रहे हैं यदि हमने पूर्व में किसी का मन दुखाया हो, घात किया हो, किसी को सताया हो तो आज हमारे प्राण चले जायें हमें कोई हर्ज नहीं किन्तु हम प्रभु परमात्मा के चरणों में सबके मंगल की कामना करते हैं।

क्षण भर के बाद देखा तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं वह बाज पक्षी जो उन पर झपटने वाला था, जो शिकारी एक तीर से दोनों को मारने वाला था, वह सर्प मारने के इरादे से नहीं आया किन्तु वह मार सकता था। अचानक वह सर्प निकला उसने शिकारी को डस लिया, शिकारी जो तीर उन कबूतर–कबूतरी पर छोड़ने ही वाला था कि सर्प के डसने से उसका निशाना चूक गया शिकारी वही मर गया और वह निशाना बाज पर जाकर लगा, बाज नीचे सर्प पर जाकर गिरा तीनों की मृत्यु हो गयी। जिसने तीनों के जीने की कामना की थी वे दोनों तो बच गये और जिन्होंने उनको मारने का भाव बनाया वे स्वयं मर गये। सच है मारने से बचाने वाला बड़ा होता है।

महानुभाव! आपको मृगसेन धीवर का दृष्टांत याद होगा जिसने पाँच बार एक मछली की रक्षा की अगले भव में वह सेठ पुत्र हुआ और उसकी भी पाँच बार रक्षा हुयी। इसलिये जीवन में सदैव सत्कार्य करो, उपकार करो यह जीवन की भूमि बहुत उपजाऊ है इसका दुरुपयोग मत करो। हम बस यही आपसे कहना चाहते हैं और इसी के साथ अपनी शब्द श्रृंखला को विराम देते हैं।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

“तेरा अंत भला नहीं, तो तूने किया कभी भला नहीं”

महानुभाव! जिसने जैसा किया, उसने वैसा पाया यह शाश्वत सिद्धान्त है इसको कभी कोई बदल नहीं सकता। जिसका अंत भला नहीं, समझो उसने करा भला नहीं। भला करना जीवन का सबसे बड़ा लाभ है। जो व्यक्ति जैसे कार्य कर रहा है उस व्यक्ति को वैसा ही फल मिलता है अन्यथा नहीं मिलता। universal truth सदा वही रहता है उसे कभी क्षणिक या तात्कालिक नहीं कर सकते। यह कोई नाले का पानी नहीं है जो आज बहकर आ गया और कल सूख गया। शाश्वत सत्य शाश्वत सत्य ही रहेगा। भला करने वाले का कभी बुरा नहीं होता और बुरा करने वाले का कभी भला नहीं होता। आप जानते हैं–

कर भला होगा भला, नेकी का बदला नेक है।
छोड़ दे हिंसा हृदय से, जीव सबका एक है।।
बुराई कर बुरा ही होगा, भलाई कर भला ही होगा
कोई देखे या न देखे, खुदा तो देखता होगा।

आत्मा और परमात्मा इन दो से अपने कृत्यों को छिपाया नहीं जा सकता। चाहे माता–पिता से, भाई–बहिन से, स्वजन–परजन से, मित्रजन से चाहे और सगे संबंधियों से, राजा से, प्रजा से, प्रशासन से किसी से भी छिपा लें किन्तु जीवन में कभी भी किसी भी कृत्य को, किसी भी भाव को, किसी भी वचन को अपनी आत्मा से और परमात्मा से नहीं छिपा सकता। अच्छा कृत्य किया है तो उसका अच्छा फल नियम से मिलेगा, बुरा किया है तो बुरा फल मिलेगा। किसान ने खेत में क्या बीज बोया, वह किसान ही जानता है दूसरों को मुट्ठी में भले ही कुछ भी दिखाता रहा कि मैं

चना बो रहा हूँ किन्तु बो रहा था बबूल के बीज। दूसरों को धोखा दे दिया किन्तु वह खेत धोखा नहीं देगा। बबूल के बीज बोये हैं तो वे ही लगेंगे चने का पेड़ नहीं। यदि बेर की गुठली बोयी है तो जामुन नहीं आयेंगे, जामुन की बोयी है तो बेर नहीं आयेंगे।

आचार्य श्री अमितगति स्वामी ने परमात्म द्वात्रिंशतिका में कहा है–

स्वयंकृतं कर्मयदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभं।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।30।।

पहले इस जीव ने जो स्वयं कर्म किये उन्ही का अच्छा या बुरा फल प्राप्त करता है यदि पर के द्वारा दिये गये फल को भोगता है तब तो अपने द्वारा किये हुए कर्म व्यर्थ हो जावेंगे?

महानुभाव! आप जानते हैं यदि कही लाल–नीले या पीले रंग का कपड़ा सूख रहा है और उस कपड़े पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा है तो उस कपड़े के माध्यम से आने वाला Reflection उसी colour का होता है, ऐसा नहीं कि काँच लाल लगा हो और आपको बाहर का दृश्य हरा दिखाई दे। आपकी आँखों के समक्ष जिस रंग का काँच लगा है तो दृश्य भी उसी रंग का दिखाई देगा उसको अन्यथा नहीं किया जा सकता। सामने वाले वृक्ष के फल को देखकर आप कह सकते हो इसका बीज यही था अन्यथा नहीं। ऐसा कभी नहीं होता कि छांछ पीने वाले को दूध की मीठी डकार आ जाये और दूध पीने वाले को छांछ की खट्टी डकार आ जाये। ऐसा कभी नहीं होता कि मिर्ची खाने से मिशरी की मिठास आ जाये और मिशरी खाने से मिर्ची की चरमराहट आ जाये। दोनों अनुभव अलग हैं। दोनों का अपना अलग–अलग स्वभाव है। किसी प्राणी की मृत्यु को देखकर कहा जा सकता है कि ये प्राणी कैसा था। आप कहते हैं 'अंत गति सो मति', 'जैसी गति वैसी मति' अथवा 'जैसी मति वैसी गति'।

महानुभाव! किसी विद्यार्थी की मार्कशीट देखकर के आप बता सकते हैं कि विद्यार्थी ने कितना अध्ययन किया है। किसी व्यापारी के ट्रेडिंग अकाउण्ट को देखकर बता सकते हैं कि व्यापारी ने कितना परिश्रम किया है, किसी कृषक के खेत को देखकर बता सकते हैं कि उसने कितना परिश्रम किया है, किसी उद्योगपति के उद्योग को देखकर आप बता सकते हैं कि कितना परिश्रम किया है, किसी शासक की प्रजा को देखकर बताया जा सकता है कि शासक किस प्रकार का है। भला करने में सब तरफ से लाभ ही लाभ है। बुरा करने से भला नहीं होता।

महानुभाव! एक व्यक्ति ने सराय में आकर के बसेरा किया, वह बड़ा निर्द्वन्द, निराकुल था कोई भी बुरा विचार उसके मन में नहीं था, उसके पास कुछ धन था। वही दूसरा व्यक्ति जिसकी कुछ दिन पहले किसी से लडाई हो गई थी वह भी आया। सराय में दो व्यक्ति ठहरे जिनका नाम वहाँ रजिस्टर में रजिस्टर्ड था। तभी तीसरा व्यक्ति जिसकी दूसरे व्यक्ति से कुछ दिन पहले लडाई हुई थी वह चुपचाप आया, उसने दूसरे व्यक्ति का अपने खंजर से मर्डर किया और वह खंजर पहले व्यक्ति के थैले में रख दी और उसके धन को लेकर भाग गया। प्रातःकाल हुआ, देखा कि एक व्यक्ति का गला कटा हुआ है, दूसरा व्यक्ति वहाँ कमरे में है, तीसरा व्यक्ति सराय में आया नहीं क्योंकि उसकी रजिस्टर में भी एण्ट्री नहीं। अब पुलिस को फोन किया गया, पुलिस आई। वह व्यक्ति कहता है मैंने मर्डर नहीं किया, जाँच की गई तो उसके बैग में वह खंजर मिला उसे पुलिस पकड़कर ले गयी। और उसे जेल हो गयी। तीसरा व्यक्ति जिसने मारा था वह भाग गया, पकड़ में नहीं आया। कुछ समय पश्चात् वह व्यक्ति जिसे जेल हुयी थी वह समय बीतने पर जेल से आया और निराकुलता से रहने लगा। उसकी पत्नी व बच्चे भी थे। किसी कारण से उसके बेटे ने उस

व्यक्ति की सहायता की थी (जिसने वास्तव में मर्डर किया था) जिसके कारण वह व्यक्ति अपना कुछ सामान उसके घर में रखकर यह कहकर गया कि मैं अभी लौटकर के आता हूँ। वह व्यक्ति ज्यों ही गया त्यों ही मार्ग में कुछ बदमाशों ने उसे मार दिया और सामान जो था वह वहीं उस पुत्र के पास रह गया। जिसका धन था उसी के पास आ गया भले ही देरी से आया। किन्तु हिंसा नहीं करने पर भी उसे सजा भोगनी पड़ी, क्योंकि उसने वह बुरा कृत्य आज भले ही नहीं किया हो किन्तु पूर्व भव में उसने बुरा किया होगा जिसका फल उसे आज प्राप्त हुआ है और आज उसने अच्छा किया था तो देरी से ही सही उसके साथ अच्छा हुआ उसे उसका धन वापस मिल गया। जिसने बुरा किया था उसका देरी से ही सही पर बुरा ही हुआ। कर्म चाहे तत्काल में किया हो चाहे पूर्व भव में उसका फल देर–सवेर मिलता जरूर है।

एक ग्वाले ने राजा की जान बचाई, राजा ने ग्वाले को इनाम स्वरूप एक सोने की मोहर देना चाहा, मंत्री ने मना भी किया किन्तु राजा ने कहा, नहीं देना चाहिये। राजा ने स्वर्ण मोहर दी किन्तु ग्वाले ने मना कर दिया, बोला राजन्! बस आपकी कृपादृष्टि चाहिये, मैंने स्वर्ण मोहरों के लोभ से आपके प्राण नहीं बचाये, आपको बचाना तो मेरा कर्त्तव्य था, फर्ज था मैं इसका ईनाम नहीं लूँगा। मंत्री ने कहा कोई बात नहीं राजन् ईनाम अपने पास रख लो। कुछ समय बाद अचानक राजा की मृत्यु हो गयी। राजा के कोई संतान नहीं थी। हाथी को घुमाया गया कि यह जिसके गले में माला डाल दे, कलश से अभिषेक कर दे उसे राजा बनाया जायेगा। हाथी गया, वह ग्वाला जंगल में पेड़ के नीचे अपनी बांसुरी बजा रहा था, प्रभु परमात्मा की भक्ति में संलग्न था, हाथी ने उसके गले में माला भी डाल दी और उस कलश से उसका अभिषेक भी कर दिया। सभी ने उसे राजा के रूप में स्वीकार किया।

महानुभाव! उसने भला किया तो उसे भला मिला। मंत्री ने उसे ईनाम देने से रोका था, उस ग्वाले ने राजा बनते ही कहा उपकार करना ही हमारा धर्म है। मंत्री ने कहा नहीं जो हमारे पुराने उसूल हैं उन ही के अनुसार राज्य संचालन जरूरी है तभी मंत्री का पुत्र आया, नहीं पिताजी! आप वृद्ध हो गये हो, अब आप विश्राम करो, मैं नया मंत्री बनूँगा। महानुभाव! जिसके मन में बुरा विचार आ गया, वह बुरा विचार उसे खा जायेगा और जिसके मन में भला विचार आ गया वह भला विचार उसका रक्षा कवच बनकर उसकी रक्षा करेगा। ऐसे एक नहीं अनेकों दृष्टांत हैं। जब–जब भी किसी ने अच्छा किया है तो उसका फल अच्छा मिला है, जब–जब भी बुरा किया है तो बुरा फल मिला है।

राजा श्रेणिक ने यशोधर मुनि के गले में मरा हुआ साँप डाला था तो राजा श्रेणिक ने नरकायु का बंध किया और उसी राजा श्रेणिक ने महावीर स्वामी की भक्ति की तो अच्छा फल भी मिला, राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया। हाथी की पर्याय में अभयकुमार के जीव ने यदि खरगोश को आश्रय दिया तो वह हाथी का जीव आगे चलकर राजपुत्र हुआ और जिसने जंगल में आग लगायी उसने मृत्यु को प्राप्त कर अनेक बार अग्नि की वेदना को सहन किया। महानुभाव! व्यक्ति प्रायःकर के इस बात को भूल जाता है, वह सोचता है मेरे किये को कौन देखता है। यदि किसान सोचे कि कौन देख रहा है कि मैं क्या बो रहा हूँ, अरे! कोई देखे या न देखे पृथ्वी को तो मालूम है कि तू क्या बो रहा है और जब अच्छे–बुरे कृत्य के बीज जीवन की भूमि में बो दिये जाते हैं, जब वे उत्पन्न होते हैं तब उनके फल दुनिया को दिखाई दे जाते हैं कि क्या बोया था। पहले निःस्वार्थ भावना से अपने सुकृत्यों के बीजों को जीवन की भूमि में बोना प्रारंभ करो, विश्वास रखो तुम्हारा बीज कभी अन्यथा नहीं हो सकता, तुम्हें

कभी भी अन्यथा दूसरे के किये का फल नहीं मिलेगा, जब भी मिलेगा, जहाँ भी मिलेगा, जैसा भी मिलेगा अपने किये का फल ही मिलेगा। भले का फल कभी बुरा नहीं होता और बुरे का फल कभी भला नहीं होता।

महानुभाव! यह छोटी सी बात समझने के लिये हम जिंदगी भर अध्ययन करते हैं। यह छोटी सी बात समझने के लिये कॉलेज, स्कूल जाते हैं, स्वाध्याय करते हैं, उपदेश सुनते हैं, परमात्मा की भक्ति पूजार्चना करते हैं, साधु–संतों की सेवा करते हैं सबका उपकार करते हैं इसी बात को समझने के लिये कि भले का फल भला होता है और बुरे का फल बुरा होता है किन्तु फिर भी पूर्व संस्कार वश यह व्यक्ति बुरे कार्य करने से बाज क्यों नहीं आता? बुरे कार्यों को क्यों नहीं छोड़ता? जब बुरा फल मिलता है तो भगवान् को दोष क्यों देता है? मुझे ही अंधा/लंगड़ा क्यों कर दिया, मुझे ही रोगी क्यों कर दिया, मुझे ही दर–दर का भिखारी क्यों बना दिया मैंने तो ऐसा कुछ किया ही नहीं। कौन कहता है नहीं किया, जब किया था तब गुप्त रूप में किया था। दुनिया ने नहीं देखा था पर तेरी आत्मा ने और परमात्मा ने देखा था आज तेरे कृत्य का फल दुनिया के सामने है। जो व्यक्ति गुप्त में पुण्य भी कर रहे हैं तो क्या उन्हें उसका फल नहीं मिलेगा? मिलेगा। ऐसे ही जिसने गुप्त में पाप का कार्य किया है तो फल उसे भी मिलेगा। गुप्त भण्डार उन्हें मिलते हैं जो गुप्त रूप से दान देते हैं। किमिच्छिक दान देते हैं, उनके सहयोगी जंगल में भी मिल जाते हैं जो अचानक हर किसी के सहयोगी बन जाते हैं। उन्हें कभी भी हाथ फैलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती जो सदैव दूसरों को अपना हाथ साथ देने के लिये बढ़ाते हैं और जो व्यक्ति हमेशा छीनकर के खाना चाहते हैं वे जीवन में कभी चैन से खा नहीं पाते भले ही छीन लेते हों। जो व्यक्ति दूसरों को खिलाकर खाते

हैं वे जहाँ भी जाते हैं लोग उन्हें पूछते हैं और उन्हें खिलाकर ही खाते हैं। जब आपने दूसरों को खिलाया है तो दूसरा भी खिलाने के लिए आपकी इंतजारी कर रहा है, आपने गर दूसरों का छीना है तो चिन्ता न करो कदम बाहर रखते ही आपका छीनने वाले भी बहुत बैठे हैं। यह क्रम कभी लुप्त नहीं होता है।

'ननंद के भी ननंद होरी' एक ननंद अपनी भावज के साथ जैसा व्यवहार करती है वह ननंद जब अपनी ससुराल जाती है तो उसे भी अपनी ननंद से वही व्यवहार प्राप्त होता है जो व्यवहार उसने अपनी भाभी के साथ किया था। यह क्रम कभी छूटता नहीं है। वही फल मिलता है जैसा बीज हम बोते हैं।

हमारा इतना ही आपसे कहना है कि यदि आपने भला किसी का नहीं किया तो समझो आप कभी भला प्राप्त नहीं कर पाओगे। भले का फल अंत में भला ही होता है, बुरे का फल अंत में बुरा होता है। यदि आज तुम बुरा कार्य करने के बावजूद भी भला फल प्राप्त कर रहे हो, पाप करते हुये भी पुण्य के फल को प्राप्त कर रहे हो तो समझो अभी तुम्हारी कहानी end को प्राप्त नहीं हुयी अभी तो कहानी का प्रारंभ चल रहा है। मध्य सीन चल रहा है अंत में जो कहानी का उपसंहार निकलकर आयेगा उसमें देखना वहाँ भले का फल नियम से भला ही होगा और बुरे का फल बुरा ही होगा।

ऐसे एक नहीं हजारों किस्से आपको याद होंगे अपने अड़ोस–पड़ोस में आँख बंद कर देखो–सोचो जिसने कभी बुरा किया हो क्या उसका कभी अच्छा हुआ है? और जिसने किसी का भला किया, दुनिया उसका भले ही बुरा करना चाहे पर बुरा कर नहीं पाई। सुदर्शन सेठ ने भला किया उसकी रक्षा हुई और रानी ने बुरा किया तो उसके साथ बुरा हुआ। सुभग ग्वाले

ने भला किया तो उसका भला हुआ, किसी कमठ जैसे उपसर्ग करने वाले ने बुरा किया तो उसका बुरा हुआ। ये गणित कभी भी, किसी भी काल में, किसी भी क्षेत्र में खण्डित नहीं हो सकता, ये शाश्वत सिद्धान्त है जैसा करोगे वैसा ही प्राप्त होगा। हिसाब तुम अपने हिसाब से करते हो, प्रकृति अपने हिसाब से करती है तुम्हारे हिसाब में भले ही कितनी गड़बड़ हो जाये किन्तु प्रकृति आपकी बेलेंसशीट बनाकर तैयार रखती है। ध्यान रखना जो किसी का धन हडपना नहीं चाहता उसके जीवन में उसका एक भी पैसा कहीं जायेगा नहीं, एक भी आपका अच्छा कृत्य निष्फल नहीं होगा।

महानुभाव! आप सभी भले कार्यों को करने में संलग्न रहो, बुरे कार्यों से, भावों से, वचनों से व बुरे विचारों से सदैव बचो। बुराई के मार्ग से बचना ही भलाई के मार्ग पर चलना है। आप सबका मंगल हो, शुभ हो, कल्याण हो इन्हीं भावनाओं के साथ..।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

कल्पना और सपना

महानुभाव! संसार के सभी चराचर प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा बुद्धिजीवी प्राणी है जिसके अंदर अनंत संभावनायें छिपी हुयी हैं, वह अनेक संभावनाओं का कोष है। यह उस पर निर्भर है कि वह किस संभावना को प्रकट करे। भूमि में अनेक बीजों को उत्पन्न करने की सामर्थ्य है यह किसान पर निर्भर करता है कि वह भूमि पर कौन सा बीज बोये, जिस बीज का फल वह किसान खा सके। भूमि मना नहीं करती कि तुम इस बीज को मेरी छाती पर नहीं उगा सकते, उसका कार्य है जो उसके लिये समर्पण करता है उसके लिये भूमि अपना स्वत्व और उसकी सामर्थ्य उसकी सारभूत शक्तियाँ सब बीज के लिये सहयोगी बनती हैं और वह बीज एक दिन पौधा बनकर फलीभूत हो जाता है। ऐसे ही मानव चाहे तो वह अपने जीवन की तमाम संभावनाओं को पूर्ण करने में समर्थ होता है। यह मानव बुद्धिजीवी है, ज्ञान का खजाना है इसके पास अनेक सामर्थ्य है इसलिये यह प्रायःकर के शांति से बैठ नहीं सकता। जितनी शांति से पशु–पक्षी बैठ जाते हैं उतनी आसानी से, शांति से मनुष्य बैठ नहीं सकता। कई बार तो ऐसा लगता है इसका स्वभाव तो बंदर से भी ज्यादा चंचल है। मछली अथाह पानी प्राप्त करके शांति से रह जाती है।

''सुखी मीन जहाँ नीर अगाधा, जिमि प्रभु सरन न एकहु बाधा'' जो भगवान् के चरणों की शरण में रहता है उसके जीवन में कोई बाधा नहीं जैसे मछली को अथाह जल मिल जाये तो उसे शांति मिल जाती है, वह भ्रमण नहीं करती चंचल नहीं होती। किन्तु ये बुद्धिजीवी मनुष्य इसे अटूट धन–सम्पत्ति प्राप्त हो जाये तब भी शांति से नहीं बैठता, और मिले, और मिले, और मिले। ये निर्धन हो जाये तब भी शांति से नहीं बैठता इसके पास

कल्पना से ज्यादा मिल जाये तब भी शांति से नहीं बैठता और ये कथंचित् प्रतिकूलता के जाल में फँस जाये तब भी शांति से नहीं बैठता। व्यक्ति के लिये सर्वाधिक दुःखदायक दो ही वस्तुयें हैं पहली कल्पना और दूसरा सपना। ये कल्पना और सपना किसी लड़कियों के नाम नहीं समझना, इन कल्पना–सपना शब्दों के अर्थ समझना है।

'कल्पना' का आशय है व्यक्ति जो अनागत की कल्पना करता है, इच्छाओं में डूब जाता है, बेलगाम आकांक्षाओं के आकाश में उड़ने लग जाता है, वे आकांक्षायें जाल बनकर के उसे जकड़ लेती हैं। वह शेखचिल्ली के हसीन सपने देखता है। आपने लुब्धक सेठ की कहानी पढ़ी होगी जिसका नाम पड़ गया था 'श्मश्रुनवनीत'। वह मूँछों में जो मक्खन आता था उसे जोड़–जोड़ कर रखता जाता था उसने ऐसा करके मटके भर घी कर लिया। एक दिन सर्दी के समय खाट पर लेटा हुआ था ऊपर छीके पर घी की मटकी लटकी थी, नीचे सिगड़ी जल रही थी वह खाट पर लेटे–लेटे सोच रहा था इस घी को बेचकर मैं राजा बनूँगा, मेरी रानी आयेगी, मेरे पैर दबायेगी और मैं उससे कहूँगा अरे! तुझे पैर दबाना नहीं आता और पैर उठाकर ज्यों ही लात मारता है वह लात महारानी में तो नहीं लगी घी की मटकी में लगी। सर्दी का समय, मटकी टूटी उसका घी नीचे रखी अग्नि में पड़ा और देखते ही देखते अग्नि की ज्वालाओं ने पूरी झोंपड़ी को जलाकर स्वाहा कर दिया। ऐसे ही मनुष्य अनावश्यक कल्पनाओं के जाल में अपने आप को जकड़ लेता है और वह उस कल्पना के पिशाच से सहसा मुक्ति नहीं पाता। कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो अनागत की तो ज्यादा नहीं सोच पा रहा है, क्यों? क्योंकि उसकी पीठ पर अतीत का भूत सवार है। मैं तुम्हें क्या बताऊँ मैंने जीवन में क्या–क्या भोगा है कहते–कहते आँख भर जाती हैं,

एक महिला अपने दिवंगत पति के बारे में कहते–कहते रोने लग जाती है, एक बालक अपने पिता के बारे में कहते–कहते कि वे ऐसे थे और आँख भर जाती हैं। एक व्यक्ति कहता है कि मैंने अभावों के दिन कैसे गुजारे कि पेट भर भोजन भी नसीब नहीं होता था, न जाने कहाँ–कहाँ भटका। वह व्यक्ति जो अतीत की स्मृति कर रो रहा है उसकी पीठ पर अतीत का भूत सवार है। पीठ पर सवार होता तो किसी को दिखाई भी दे जाता किन्तु यह भूत तो उसके मस्तक पर सवार है। जैसे घुड़सवार घोड़े पर सवार होता है, घोड़े की नाक में नकेल डाली जाती है ऐसे ही अतीत की स्मृतियों का सवार वह सोचने वाले के मस्तक पर सवार हो गया मस्तक में, विचारधारा में उसने एक नकेल डाल दी है। इसके कारण व्यक्ति अब स्वतंत्र नहीं जी सकता।

भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं यदि जीवन को सुखद और शांतिमय बनाना है तो अतीत के भूत से भी छूट जाओ और अनागत के पिशाच की गिरफ्त में भी मत आओ। वर्तमान में जीओगे तो वर्धमान बन जाओगे। तो ये कल्पना और सपना पिशाच और भूत की तरह से हैं। अतीत को पकड़ रहे हैं तो समझो भूत ने तुम्हारी गर्दन पीछे से पकड़ ली और अनागत की कल्पनाओं को सोचते चले जा रहे हैं तो समझ लीजिये ये पिशाच बनकर तुम पर वार करने आ रही हैं। इन कल्पना और सपना में कहीं किसी को सुख नहीं मिल सकता ये केवल भटकाने में समर्थ हैं, लक्ष्य तक पहुँचाने में नहीं और बड़ी बात तो ये है कि व्यक्ति प्रायःकर जब भी कल्पना करता है तो अधिकाशतः नकारात्मक कल्पना करता है। कैसी कल्पना? जैसे आप समय से घर नहीं पहुँचे तो परिवार वाले सोच रहे हैं पता नहीं क्या हुआ, कहीं कोई अनहोनी तो नहीं हो गयी। बेटा समय से स्कूल से नहीं आया तो मन में आ जाता है कहीं accident तो नहीं हो

गया और कोई बात तो नहीं हो गयी तो सबसे पहले कोई विचार आता है तो नकारात्मक ही आता है। और जब–जब भी मस्तिष्क में नकारात्मक विचार आते हैं तब–तब मस्तिष्क की क्षमता घटती है। वह नकारात्मक विचार मस्तिष्क की क्षमता के लिये घुन की तरह से हैं, दीमक की तरह से हैं जो सोचने की क्षमता को नष्ट कर देते हैं।

अतीत की स्मृतियाँ उस पर बोझ की तरह से होती हैं जैसे किसी धागे पर थोड़ा सा बोझ टाँग दो तो वह धागा सहन कर सकता है और ज्यादा टाँग दो तो धागा टूट जायेगा। यदि आपके हाथ में एक गिलास 200gm का है उसमें 50gm पानी डाल दिया और किसी ने कहा आप इसे पकड़े रखो, आपने पकड़ लिया, कैसा लगा? कुछ भी नहीं। 20 मिनट तक पकड़ा कैसा लगा? थोड़ा हाथ थका सा लग रहा है पुनः 1 घंटे पकड़ा तो हाथ Move नहीं कर रहा और कहा 10 घंटे तक पकड़े रहों या 24 घंटे तक पकड़े रहो, पकड़ ही नहीं सकोगे। हाथ अकड़ जायेगा गिलास हाथ से छूट ही जायेगा। 50gm पानी को तुम्हारा इतना बलवान् हाथ पकड़ नहीं पा रहा, क्या बात है? जिसमें आप कहते हो यदि मैं गुस्से में आकर दीवार को ठोकर मार दूँ तो दीवार की दो–चार ईंटें खिसक जायेंगी, चलो न सही दीवार की किसी के मुँह पर मुक्का मार दूँ तो बत्तीसी हिल जायेगी, इतना साहस आप रखते हैं और 50gm पानी का वजन नहीं झेल पाया आपका हाथ। जब आपका हाथ 50gm पानी को 24 घंटा झेलने में असमर्थ हो रहा है हाथ से गिलास गिर गया तो ये सोचो तुम्हारे मस्तिष्क में Negative विचार कितने भरे पड़े हैं, कितनी दुश्चिंतायें हैं, कितने दुष्विचार हैं तब मस्तिष्क आपका कमजोर क्यों नहीं होगा? निःसंदेह कमजोर होगा। इसलिये नकारात्मक विचारों को अपने मन में से निकालो। सपने देखना

बंद करो कल्पना सोचना बंद करो, जो वर्तमान काल में है उसमें जीना सीखो, वर्तमान काल सबसे ज्यादा सुखद है। एक बात अपनी जीवन की डायरी में नोट कर लेना किसी भी व्यक्ति के साथ ऐसी अनहोनी कभी नहीं हो सकती जिसे वह सहन नहीं कर सकता। वह वर्तमान काल की प्रत्येक घटना को सहन कर सकता है। व्यक्ति भविष्य की कल्पना करके मर जाता है आज तो ऐसा है मैं सहन कर रहा हूँ कल क्या होगा, कल कहीं ऐसा हो गया तो? इसे सोच–सोच कर ही मर जाता है। वर्तमान काल की प्रत्येक स्थिति को प्रत्येक व्यक्ति सहन करने में समर्थ है। कई बार ऐसा भी देखा गया कि कोई व्यक्ति अग्नि काण्ड में 40%-60% जल भी गया तब भी अपनी सकारात्मक ऊर्जा से, will power से पुनः स्वस्थ हो गया। यहाँ तक कि व्यक्ति के 2–2, 4–4 गोली, छर्रा भी लगे फिर भी वह ठीक होकर के आ गया। और कई बार ऐसा भी देखा कि गोली लगी नहीं किन्तु गोली का धमाका सुना वहीं गिर गया attack आया व मर गया।

महानुभाव! व्यक्ति भविष्य में होने वाली किसी भयावह घटना का स्मरण करके मर जाता है। दहशत बहुत बुरी है, घटना इतनी बुरी नहीं है। दहशत से व्यक्ति मौत आने के पहले मर जाता है। जंगल में भटका हुआ एक व्यक्ति संयोगवशात् हारा थका एक वृक्ष के नीचे जाकर बैठा। पसीने से लत–पत, लंबी–लंबी श्वांसे भरता हुआ जिसकी आँखों में अंधेरा छाया हुआ है गिरता–पड़ता भूखा–प्यासा वह व्यक्ति उस वृक्ष के नीचे सो गया। पुनः जागा, उस छाया ने कुछ थकान तो दूर की, अभी तक उसे इतना ही लग रहा था कि इस धूप से बचने के लिये छाया मिल जाये अब छाया मिल गयी तो इसके आगे की इच्छा प्रारंभ हो गयी। हे प्रभु! काश! यहाँ कोई ठंडा–ठंडा पानी दे देता तो मेरी प्यास बुझ जाती और आनंद का अनुभव हो जाता, तुरंत ही उसके सामने ठंडा पानी

आ गया उसने पानी पीया, पुनः कहता है काश! यहाँ स्वादिष्ट व्यंजन मिल जाते, तुरंत ही उसके सामने भोजन की थाली आ गयी, पुनः बोला काश! यहाँ सोने के लिये वातानुकूलित कक्ष होता तुरंत ही कक्ष बन गया और वह सो गया। उसे नहीं मालूम था कि मैं जिस वृक्ष के नीचे बैठा हुआ हूँ वह कल्पवृक्ष है, कल्पना करते ही सब चीज सामने आ रही हैं। वह जैसे ही जगा, सोचने लगा अरे! यहाँ तो चारों तरफ जंगल ही जंगल है मैं अकेला हूँ, कहीं कोई खतरनाक जानवर आकर मुझे मार न दे, इतने में ही शेर आया और उसको अपना ग्रास बनाकर चला गया।

महानुभाव! यदि कल्पना भी करनी है तो क्यों न अच्छी ही करो, हो सकता है जिस वृक्ष के नीचे तुम बैठे हो वह कल्पवृक्ष ही हो। एक महात्मा ने अपने शिष्यों को ध्यान लगाना सिखाया उनसे कहा एकांत स्थान पर बैठो, मौन ले लो, स्थिर आसन से बैठ जाओ आँखे बंद करो। अब इन बंद आँखों से कोई पिक्चर देखो कोई ऐसा दृश्य देखो जिसमें आप involve हों जैसे आप शिखर जी की यात्रा कर रहे हो या सौधर्म इन्द्र बनकर पंचकल्याणक कर रहे हो, जो आपको पसंद आये वैसी कल्पना करें व दृश्य अपने सामने लायें।

एक शिष्य ध्यान में लीन होने गुफा में गया और ज्यों ही ध्यान के लिये बैठने वाला था कि सामने से एक भैंसा जा रहा था उस शिष्य ने तुरंत ही आँख बंद कर ली, जंगली भैंसा तुरंत ही वहाँ से निकल गया। थोड़ी देर बाद गुरु तो ध्यान कर बाहर निकल गये शिष्य को आवाज लगायी, शिष्य बाहर आओ। वह बोला गुरुजी मैं बाहर नहीं आ सकता। पूछा क्यों नहीं आ सकते, बोला देखो मेरे कितने लंबे–लंबे सींग हो गये, मैं निकलूँगा तो मेरे सींग अड़ जायेंगे। गुरुजी आश्चर्य करते हैं यह क्या कह रहा है उसे आकर जगाया कहा तुम क्या कहते हो तुम जानवर नहीं

इंसान हो। दूसरा शिष्य दूसरी गुफा में ध्यान कर रहा था, वे वहाँ पहुँचे, पहुँचते ही आवाज आयी सीकारी की। गुरुजी ने कहा ये कैसी आवाज है वह बोला गुरुजी मैंने अभी ध्यान में दाल–बाटी बनायी थी दाल में मैंने पटना वाली बड़ी चटपटी मिर्च डाल दी थी इसलिये मेरी सीकारी की आवाज निकल आयी। गुरु कहता है अरे महाभाग! तूने ध्यान में भोजन ही करना था तो रसगुल्ला बनाकर क्यों नहीं खाया कम से कम आहा–आहा की आवाज तो आती, सीकारी की नहीं। यदि जीवन में कल्पना भी करना है तो अच्छे की कल्पना करो।

महानुभाव! सकारात्मक सोच भयावह घटना, स्मृति से निपटने के लिये समर्थ अस्त्र–शस्त्र है। व्यक्ति अनागत कल्पना करता है उसमें अपनी तरफ से मिर्च मसाला मिलाता जाता है जैसे गृहिणी किसी दूसरे के हाथ की बनी वस्तु को ज्यों का त्यों नहीं खा सकती, कहेगी नमक ज्यादा है या मिर्च ज्यादा है या ये कम है वो कम उसे ये दिखाना है कि तेरी हाथ की बनी वस्तु तो अच्छी है ही नहीं। जैसे कोई सुनार अपनी माँ का जेवर भी बनायेगा तो मिलावट जरूर करेगा। कोई ही दूधिया होगा जो दूध में मिलावट न करे। तो अनादिकाल से ही मिलावट करने की आदत पड़ी है। हम अपनी ही कल्पनाओं में मिलावट करते हैं स्वयं प्रश्न बनाकर स्वयं ही उत्तर देते हैं। किन्तु नकारात्मक सोचकर अपना बहुत सारा समय खराब कर देते हैं। अचानक फोन आता है जिसके बारे में सोच रहे थे वह अब दुनिया में नहीं रहा। जिसके लिये अन्याय से, पाप से धन कमाया वह अब नहीं रहा। इसलिये कभी नकारात्मक नहीं सोचो। स्थिति कभी तुम्हारे जीवन में ऐसी नहीं आयेगी जिससे तुम नहीं निपट सकते हो किन्तु तुम पहले से ही उस स्थिति को इतना भयावह बना लेते हो और अपनी शक्ति को नष्ट कर देते हो।

महानुभाव! बस इतना ही कहना चाहते हैं आप वर्तमान में जीने की कोशिश करो, आप भी वर्धमान बन सको। अतीत के भूत से पीछा छूट जाये, अनागत के पिशाच भी तुम्हें पकड़ न पायें ऐसा जीवन जीना ही सुखद जीवन कहलाता है। आपके जीवन में शुभ हो, मंगल हो इन्हीं भावनाओं के साथ...........।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

सम्यग्ज्ञान

महानुभाव! जिनशासन की निर्मल और अक्षुण्ण परम्परा में एक से एक बढ़कर तपस्वी, वाग्मी, नैयायिक, सिद्धान्तविद् एवं आध्यात्मिक मनीषी आचार्य हुये जिन्होंने जिनशासन की समय–समय पर महती प्रभावना की। उन आचार्य महोदय की निर्मल परम्परा में एक नाम बड़े सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है वे हैं आचार्य भगवन् श्री कुलभद्र स्वामी जी। जिनका नाम लेने मात्र से परिणामों में सरलता, सहजता, भद्रता का एक आभास होता है आचार्य कुलभद्र स्वामी लोकव्यवहार के निष्णात, प्रख्यात आचार्य हुये। निर्दोष चर्या के धनी अपनी आत्मा का कल्याण करते हुये सैकड़ों पतित जनों को कल्याण के मार्ग पर लगाने वाले, हजारों–लाखों श्रावकों को सन्मार्ग दिखाने वाले आचार्य भगवन् ने लोकहित के लिये "सारसमुच्चय" नाम का ग्रंथ लिखा जिसमें उन्होंने सम्यग्ज्ञान के संबंध में लिखा है कि जीवन में सम्यग्ज्ञान की महती आवश्यकता है। बिना ज्ञान के जीवन में कुछ भी करो वह शून्य की तरह से होता है जैसे बिना अंक के शून्यों का कोई महत्व नहीं होता कितने भी शून्य लगाते चले जाओ वह कोई संख्या नहीं बन पाते उसी प्रकार जीवन में सम्यक्दर्शन का अविनाभावी सम्यग्ज्ञान नहीं है अर्थात् मिथ्याज्ञान के साथ किया गया कितना भी तप, व्रत, त्याग हो यह सभी संसारवर्धक ही होते हैं मोक्षमार्ग में किंचित् भी सहयोगी नहीं होते। क्योंकि मोक्षमार्ग का प्रारंभ तो सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान से होता है इसके बिना मोक्षमार्ग प्रारंभ नहीं होता। सम्यग्दर्शन के अविनाभावी सम्यग्ज्ञान हो, सम्यग्ज्ञान के अनंतर सम्यक् चारित्र की प्राप्ति हो तब मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी का यदि पत्थर रखा गया है तो वह सम्यग्दर्शन से रखा जाता है, यदि वह नहीं है तो मोक्षमार्ग का निशान भी नहीं है। सम्यग्ज्ञान को आचार्यों ने दीपक की तरह से कहा, यह स्वपर प्रकाशी दीपक है जो स्वयं को भी प्रकाशित करता है अन्य पदार्थों को भी प्रकाशित करता है और दीपक का जीवन में क्या महत्व होता है यह तो सभी समझते हैं। चाहे किसी व्यक्ति के पास नासिका के मूल भाग से लेकर कर्ण के उपरिम छोर तक लंबे नेत्र भी बने हों, उनमें दिव्य ज्योति भी विद्यमान हो किन्तु बाह्यजगत् में अंधकार है तो वे विशाल नेत्र प्रकाश के अभाव में व्यर्थ हैं, उन नेत्रों से वह पर्वत को भी नहीं देख सकता। यदि बाह्य जगत् में अमावस्या का घोर अंधकार विद्यमान हो तो व्यक्ति सामने हाथी जैसे विशालकाय जानवर को भी नहीं देख सकता, वह अंधकार में महासागर जैसे बड़े गर्त को भी नहीं देख सकता। लौकिक प्रकाश की जब जीवन में इतनी अवश्यकता है, लौकिक प्रकाश का इतना बड़ा महत्व है तब पारमार्थिक प्रकाश के महत्व को कौन छद्मस्थ अपने शब्दों में कहने में समर्थ हो सकता है।

ज्ञान आत्म क्षेत्र में फैलने वाला प्रकाश है। बाह्यजगत् में ज्योतिष ग्रहों के माध्यम से प्रकाश होता है, बाह्यजगत् में अग्नि आदि के माध्यम से प्रकाश होता है, बाह्यजगत् में विद्युत उपकरणों के माध्यम से प्रकाश संभव है किन्तु अन्तर्जगत् में जिनवचन के बिना प्रकाश संभव नहीं है। जिनवचन जिनागम में विद्यमान हैं उन जिनागम वचनों को निर्ग्रंथ गुरु अपने मुख से उच्चारण करते हैं तो भव्य जीव उन्हें सुनकर सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। उस सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करने के उपरांत ही उसके जीवन में हित व अहित का निर्णय संभव है। सम्यग्ज्ञान के बिना हित और अहित का निर्णय संभव नहीं है। जिस प्रकार प्रकाश

के बिना बाह्य पदार्थ का निर्णय नहीं किया जा सकता कि सामने ठूंठ है, आदमी है कि कोई स्तम्भ है, लकड़ी है या कोई वस्त्र टंगा हुआ है। घोर अंधकार में कुछ आभास सा होता है, निर्णय नहीं हो पाता। मंद–मंद प्रकाश होता है तो संशय होता है सम्यक् निर्णय नहीं होता। इसी तरह से सम्यग्ज्ञान के अभाव में तत्त्वों का सम्यक्निर्णय नहीं हो पाता है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी जी ने सार समुच्चय ग्रंथ में लिखा–

ज्ञान नाम महारत्न, यन्नप्राप्तं कदाचन।
संसारे भ्रमता भीमे, नानादुःखविधायिनी।।13।।

इस संसार में सबसे बड़ा कोई रत्न है तो आचार्य कुलभद्र स्वामी जी के शब्दों में वह रत्न है 'ज्ञान'। अन्य आचार्यों ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों को रत्न कहा किंतु कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि सम्यग्ज्ञान मध्य दीपक की तरह से सम्यक्त्व और चारित्र के बीच में रहता है। ज्यों–ज्यों सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती है त्यों–त्यों सम्यक्त्व में दृढ़ता आती चली जाती है, ज्यों–ज्यों सम्यग्ज्ञान की वृद्धि होती चली जाती है त्यों–त्यों चारित्र में वृद्धि होती है, वैराग्य में वृद्धि होती है, संयम–तप और ध्यान में वृद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान दोनों तरफ से संभालकर चलता है। सम्यग्ज्ञान की वृद्धि जहाँ श्रद्धा, भक्ति, विनय, समर्पण में वृद्धि का कारण है, स्थिरता का कारण है वहीं सम्यग्ज्ञान वैराग्य, चारित्र, संयम, तप और शुभ ध्यान का कारण है। सम्यग्ज्ञान को आचार्य कुलभद्र स्वामी जी ने अत्यंत महत्वपूर्ण रत्न कहा है। यूँ तो रत्न की बात करें तो सम्यग्दृष्टि देव–शास्त्र–गुरु को भी रत्न मानते हैं आप लोग पूजन में पढ़ते हैं–

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न–भिन्न कहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।

देव–शास्त्र–गुरु रत्न हैं क्योंकि ये तीनों ही भव्य जीव की आत्मा में सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र को पैदा करने वाले हैं इसलिये देव–शास्त्र–गुरु को रत्नों की खान कह दें, रत्नाकर कहें तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। तो सम्यग्दृष्टि भक्त हृदय देव–शास्त्र–गुरु को रत्न कहता है।

एक योगी सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्र को रत्न कहता है। आत्मा में लीन जिसने ज्ञान के प्रभाव को देखा है, ज्ञान के माध्यम से चित्त को एकाग्र किया जाता है, ज्ञान ही ध्यान का मुख्य कारण है, ज्ञान ही सम्यक्त्व को निर्मल करता है, चारित्र को निर्मल करता है, सम्यक्त्व को दृढ़ करता है, ज्ञान ही नव–नव संवेग–वैराग्य को उत्पन्न करता है। ज्ञान के माध्यम से ही चित्त में वात्सल्य का झरना फूट पड़ता है, ज्ञान के माध्यम से ही निःशंकित आदि अंग संभावित हैं, ज्ञान के माध्यम से ही संशय आदि दोषों का निवारण संभव है, ज्ञान के माध्यम से ही व्रतों के अतिचारों को दूर किया जा सकता है बिना ज्ञान के नहीं इसीलिये आचार्य महोदय ज्ञान को सबसे बड़ा रत्न कह रहे हैं।

लोकव्यवहार में रत्न किसे कहते हैं? जो सर्वोत्कृष्ट है, सारभूत है उसे रत्न कहते हैं। कई बार कहते हैं आचार्यरत्न, उपाध्याय रत्न, साधुरत्न, श्रावकरत्न, आर्यिका रत्न अर्थात् जो उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है, सारभूत है। लौकिक जगत् में कुछ स्पेशल पुद्गल के टुकड़ों को रत्न कहा जाता है उनके नाम भी अलग–अलग रखते हैं कोई हीरक है, पन्ना है, मूंगा है, माणिक है, पुखराज आदि–आदि किन्तु नीतिकार किसे रत्न कहते हैं? वह कहते हैं पृथ्वी पर तो तीन ही रत्न हैं–

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नंसुभाषितं।
मूढः पाषाण खण्डेषु, रत्न संज्ञा विधीयते।।

पृथ्वी पर तीन रत्न हैं–आगत अतिथि को जल दीजिये, प्यासे को पानी पिला दीजिये वह जल रत्न की तरह से है, भूखे को भोजन दे दीजिये वह रत्न की तरह से है और किसी को भी मीठे शब्दों से बोलिये, मीठे वचन भी रत्नों की तरह से हैं। नीतिकार पृथ्वी पर इन्हीं तीन को रत्न कहते हैं। वे मूर्ख हैं जो पत्थर के टुकड़ों को रत्न मानते हैं। यहाँपर आचार्य महोदय कह रहे हैं कि क्या कभी पुद्‍गल आत्मा का रत्न हो सकता है? पुद्‍गल का स्वभाव स्पर्श–रस–गंध–वर्ण है उसका नाम चाहे हीरा रखो या पन्ना या वैडूर्यमणी, नीलम, पुखराज चाहे और भी कोई रत्न–उपरत्न है वह है तो पाषाण, पुद्‍गल। वे पुद्‍गल कभी आत्मा का रत्न नहीं हो सकते। आत्मा का रत्न तो आत्मा का गुण है। जिसने आत्मा के गुणों को नहीं जाना वही व्यक्ति बाहर के पुद्‍गलों को रत्न मानता है, उन्हें ही सारभूत–सर्वश्रेष्ठ मानकर ग्रहण करता है किन्तु आचार्य महोदय कहते हैं हे भव्य! इस बहिरात्माबुद्धि को छोड़, मिथ्याबुद्धि को छोड़, जिस ज्ञान दीपक के माध्यम से आत्मा में प्रकाश होता है, आत्मा के वैभव का परिज्ञान होता है, आत्मा के वैभव को प्राप्त करने की विधि जानी–सीखी जाती है उस प्रकाश रूपी रत्न को प्राप्त कर लो। आज तक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने इस सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न को प्राप्त नहीं किया।

एक बार किसी नगर का राजा वन भ्रमण करने के लिए गया। वहाँ पहुँचकर उसने एक लड़की को नदी के किनारे देखा। जो कि मछुआरे कि पुत्री थी और मछलियाँ पकड़ रही थी। उसे देखते ही राजा उस पर मोहित हो गया। उसने उस युवती से विवाह कर लिया। अब राजा–रानी का महल में भव्य स्वागत हुआ। महल में पहुँचकर रानी का स्वास्थ्य बहुत प्रतिकूल हो गया, उसके सिर में भयंकर दर्द रहने लगा। अनेक वैद्य, चिकित्सकों

को बुलवाया गया, विभिन्न प्रकार की औषधियाँ रानी को दी गईं किन्तु रानी का सिर दर्द सही न हो सका। राजा ने ढिंढोरी बजवा दी कि जो कोई भी रानी का सिर दर्द सही करेगा उसे सौ स्वर्ण मोहरें दी जाएँगी। घोषणा सुनकर सभी वैद्य आदि ने प्रयास किया किन्तु निष्फल रहे। तभी एक वृद्ध अनुभवी व्यक्ति राजदरबार में पहुँचा। एवं बातचीत के पश्चात उसने कहा कि रानी साहिबा को कुछ समय के लिए उनके मायके भेज दो। राजा ने वैसा ही किया। रानी के मायके पहुँचने के बाद अगले दिन ही राजा के पास सूचना आयी कि अब रानी पूर्ण स्वस्थ है उनका सिर दर्द एकदम ठीक है। राजा ने उन्हें महलों में बुलवा लिया, जैसे ही वह महलों में आयी उनके फिर से जोरों का दर्द शुरू हो गया। राजा ने उन्हीं वृद्ध व्यक्ति को बुलवाया और उस दर्द का कारण पूछा। उन वृद्ध व्यक्ति ने कहा महाराज! बात ये है कि यह महल चंदनादि की सुगंध से भरा हुआ है और महारानी जहाँ जन्मी है पली–बड़ी हुई है वह स्थान मछलियों की दुर्गंध ये युक्त था। उन्हें उसी दुर्गंध की आदत है, चंदनादि की सुगंध से उनका सिर दर्द हो जाता है।

इसी प्रकार इस आत्मा को मिथ्याज्ञान रूपी भयंकर दुर्गंध के मध्य रहने की आदत हो गई है, सम्यग्ज्ञान का, जिन वचन, प्रवचन, शास्त्रादि का नाम लेते ही उनके सिर में दर्द हो जाता है। शास्त्र अध्ययन, स्वाध्याय वो करना ही नहीं चाहता। यह अनादिकालीन मिथ्यात्व के संस्कार हैं जो सम्यग्ज्ञान रूपी निधि से व्यक्ति के सिर में दर्द हो जाता है।

महानुभाव! यह सम्यग्ज्ञान तीन लोक में सबसे बड़ा रत्न है, आज तक इस संसारी प्राणी ने उसे प्राप्त नहीं किया। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति निर्ग्रंथ गुरु के चरणों में बैठकर होती है, उनके शरीर से निःसृत वर्गणायें अंदर के अंधकार को दूर करने

में समर्थ होती हैं अर्थात् उन मुनिराज की सम्यग्ज्ञान की किरणें आपके अंदर में जा रही हैं, आपके अज्ञान अंधकार को तिरोहित कर रही हैं, आपका सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान प्रकट हो रहा है। वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी जिनेन्द्रभगवान् के सामने बैठकर, उनके बिम्ब के सामने बैठकर अंदर का मिथ्यात्व विगलित हो जाता है। जिनवाणी के वचन जब कर्णद्वार से हृदय तक पहुँचते हैं, हृदय की देहरी पर दस्तक देते हैं तो वे जिनवाणी के शब्द भी सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न हैं उनके माध्यम से भी चेतना में प्रकाश होता है।

स्वाध्याय करते–करते आपकी आँखों में कई बार आँसू आते हैं, मुनिराज की वंदना करते–करते कई बार आँखों में आँसू आते हैं। भगवान् की पूजा–भक्ति–दर्शन करते हुये आँखों में कई बार आँसू आ जाते हैं, आहारदान, पड़गाहन करते समय भी कई बार आँखों में आँसू आ जाते हैं उनको देखकर मन गदगद हो जाता है। जब कषाय की मंदता होती है, व्यक्ति संवेदनशील होता है तब भावुक होने लगता है उसकी आँखों से मिथ्यात्व का मल पिघलकर निकलने लगता है जैसे अग्नि की समीपता से मोम पिघल–पिघल कर बहने लगता है ऐसे ही देव–शास्त्र–गुरु के सामने बैठते ही अंदर में विद्यमान अज्ञानादि पिघलने लगता है, अंदर में आंनद की अनुभूति होने लगती है।

महानुभाव! बाहर की वस्तुयें कितनी भी इकट्ठी कर लो चित्त को शांति चित्त की विशुद्धि से ही मिलेगी। चक्रवर्ती छः खण्ड, नौनिधि, चौदहरत्न को प्राप्त करके भी शांति को प्राप्त कहाँ कर पाता है। उसकी अभीप्सा रहती है यदि छः खण्ड और हों तो उन्हें भी जीत लूँ किन्तु वह कितने भी खण्ड जीते, शांति बाहर के खण्ड जीतने में नहीं है। वह खंड–खंड जीतने वाला चक्रवर्ती भी शांति को प्राप्त नहीं करता और 'आखण्डलाः' अर्थात् सौधर्म

इन्द्र भी प्राप्त नहीं करता क्योंकि शांति बाहर के वैभव में नहीं शांति तो आत्मा के चैतन्यमय वैभव को निहारने में, अनुभव करने में और आत्मा में लीन होने में मिलती है। आचार्य महोदय यहाँ कह रहे हैं–**"ज्ञान नाम महारत्न"** यह ज्ञान ही सबसे बड़ा रत्न है। **'यन्नप्राप्तं कदाचन'** आज तक इसे प्राप्त नहीं किया इसीलिये **"संसारे भ्रमता भीमे"** यह जीव अनादिकाल से संसार में भ्रमण करता चला आ रहा है। यह भवपरिभ्रमण नष्ट ही नहीं हो रहा क्योंकि कोई व्यक्ति यदि आँख पर पट्टी बाँधकर दौड़ता रहे–दौड़ता रहे किंतु जहाँ जाना है वह ज्ञात ही नहीं, वह खाई–कंदराओं में घूमता जा रहा है तो पहाड़ पर स्थित मंदिर कैसे मिलेगा। आँखों से पट्टी खोले तब मालूम चले कि जहाँ जाना चाहता है वह स्थान कहाँ है। ऐसे ही अनादिकाल से हमने भी अपनी आँखों पर मिथ्यात्व की पट्टी बाँध रखी है, इस मोह के कारण इस शरीर को जन्म देने वाले माता–पिता को अपना मान बैठे हैं, अपनी आत्मा को भूल गये। इस शरीर से जन्म लेने वाले पुत्र–पुत्री को अपना मान बैठे अपनी आत्मा को भूल गये, इस शरीर की सुख–सुविधा को अपना मान बैठे और शरीर के अंदर विद्यमान आत्मा को भूल गये, इस शरीर से जो धन कमाया था जो नाम–पद–प्रतिष्ठा प्राप्त की थी उसे अपना मान बैठे आत्मा को भूल गये। इस शरीर के परिश्रम से जो भवन बनाये, वाहन खरीदे, नौकर–चाकर सेवा में लगाये थे, शरीर से नाते जोड़े, आत्मा तक पहुँचे ही नहीं।

मोही प्राणी को समझाना असंभव है। जब तक वह न समझे तब तक एक नहीं हजारों व्यक्ति समझायें वह समझ नहीं सकता। किसी के साथ कोई दुःखद घटना हो गयी उसे समझाओ भाई जो हो गया सो हो गया अब क्यों रोते हो तो वह मारने दौड़ता है। कहता है–अरे! तुम क्या जानो मेरा दुःख मुझसे पूछो मैं उसके

बिना जी नहीं सकता, मुझसे पूछो मेरा एक–एक समय कितना भारी पड़ रहा है; मुझे मृत्यु अच्छी लगती है, उसके वियोग में मैं मर जाऊँ तो ज्यादा अच्छा है। उस मोही को कौन समझाये? उसे तो वही अपना दिखाई दे रहा है, आत्मा के बारे में परिज्ञान ही नहीं। इसलिये आचार्य महोदय कह रहे हैं अज्ञानता में अनंत परावर्तन करना संभव है और सम्यग्ज्ञान के साथ संख्यात परावर्तन भी संभव नहीं हैं। परावर्तन तो ठीक है सम्यग्ज्ञान न छूटे तो जीव 4–6–10 भव से ज्यादा भ्रमण नहीं कर सकता। तीन–चार भव मनुष्य के और तीन–चार भव स्वर्ग के 66 सागर का काल है। सम्यक्त्व के साथ इससे ज्यादा संसार में रह नहीं सकता यदि रहा तो अन्तर्मुहूर्त के लिये सम्यक्मिथ्यात्व में चला गया फिर 66 सागर काल मिलेगा किन्तु सम्यक्त्व के साथ 66 सागर से और 4 पूर्व कोटि से अधिक संसार परिभ्रमण कर नहीं सकता, मोक्ष प्राप्त कर लेगा। या तो संसार छूट जायेगा या सम्यग्ज्ञान छूट जायेगा। या तो मिथ्यात्व में चला जायेगा या संसार छोड़कर सिद्धालय में चला जायेगा।

महानुभाव! आचार्य महोदय का भाव यही है कि नाना प्रकार के दुःखों को देने वाले उस मिथ्याज्ञान को छोड़ो, वह हटेगा मिथ्यात्व को छोड़ने से और मिथ्यात्व छूटेगा उनसे जिन्होंने सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है उनके पास बैठो तो हो सकता है उनकी वर्गणायें आपकी मिथ्यात्वजन्य वर्गणाओं को शिथिल कर दें। जिन्होंने सम्यक्त्व के फल को प्राप्त किया, जिन्होंने रत्नत्रय को प्राप्त किया उनकी चरण सन्निधि में बैठकर, उनकी वर्गणायें आपको ऐसी शक्ति दें जिससे आप मिथ्यात्व को दूर कर सको, अज्ञान को, असंयम को दूर कर सको।

महानुभाव! इस मनुष्य भव को प्राप्त करके बस इतना पुरुषार्थ कर लो। जीवन में लाखों–करोड़ों रुपये कमाये, हों

सकता है किसी ने अरबों–खरबों भी कमाये हों, इससे ज्यादा भी कमाये हों किन्तु इससे संसार का अंत नहीं होता, मनुष्य भव सार्थक नहीं होता। मनुष्य भव सफल होता है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र से। जीवन में यह प्राप्त कर लिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया। रोटी–कपड़ा–मकान तो सब प्राप्त करते हैं कोई रूखी खाता है, कोई बासी खाता है, कोई ताजी खाता है, कोई कपड़ा सस्ता पहनता है, कोई महँगा पहनता है कोई टाट का पहनता है तो कोई नंगा रहता है, कोई झोपड़ी में रहता है कोई कोठी में रहता है तो कोई जंगल में रहता है, कोई फुटपाथ पर सोता है किन्तु इन सबकी प्राप्ति में हमारे जीवन की सफलता–सार्थकता नहीं है। हमारे जीवन की सार्थकता तो रत्नत्रय रूप धर्म को प्राप्त करने में है, सम्यक् वैराग्य को प्राप्त करने में है, सम्यक् तप को प्राप्त करने में है, सम्यक् ध्यान को प्राप्त करने में है। दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को भाओ जिससे यह नर भव सफल और सार्थक बन सके। इन्ही सद्भावनाओं के साथ मंगलमय शुभाशीष। आज बस इतना ही.......।।

।।श्री शांतिनाथ भगवान् की जय।।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा

रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य

1. प्राकृत वाणी भाग-1, 2, 3
2. अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
3. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
4. अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
5. जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
6. जदि-किदि-कम्मं (यति कृतिकर्म)
7. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
8. णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
9. तच्चसारो (तत्त्व सार)
10. धम्म-सुत्तं (धर्म सूत्र)
11. रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
12. सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13. अप्पणिब्भर भारदो (आत्मनिर्भर भारत)
14. विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्या वसु श्रावकाचार)
15. अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
16. अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
17. णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
18. मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
19. मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
20. विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
21. विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
22. समवसरण सोहा (समवशरण शोभा)
23. वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
24. अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
25. कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
26. को विवेगी (विवेकी कौन)
27. पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
28. तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
29. रयणकंडो (सूक्ति कोश)
30. धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)
31. कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
32. खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33. सिरि सीयलणाह चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
34. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
35. समणायारो (श्रमणाचार)

भावार्थ

1. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
2. णिग्गंथ-थुदि (निर्ग्रंथ स्तुति)
3. तच्च-सारो (तत्त्वसार)
4. रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्रशांति महायज्ञ)
5. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
6. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)

टीका ग्रंथ

1. प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)
2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)

इंग्लिश साहित्य

Inspirational Tales Part- 1 & 2

वाचना साहित्य

1. मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)
2. बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3. शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)
4. स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य

1. आईना मेरे देश का
2. उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3. उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
4. उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)
5. उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)
6. उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7. उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)
8. उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9. उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)
10. उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)
12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज
14. गुरुत्तं भाग 1-16
15. चूको मत
16. जय बजरंगबली
17. जीवन का सहारा
18. ठहरो! ऐसे चलो
19. तैयारी जीत की
20. दशामृत
21. धर्म की महिमा
22. ना मिटना बुरा है न पिटना
23. नारी का धवल पक्ष
24. शायद यही सच है
25. श्रुत निर्झरी
26. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
27. सीप का मोती (महावीर जयंती)
28. स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1. अन्तर्यात्रा
2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय
4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान
6. आहारदान
7. एक हजार आठ
8. कलम पट्टी बुद्धिका
9. गागर में सागर
10. गुरु कृपा
11. गुरुवर तेरा साथ
12. जिन सिद्धांत महोदधि
13. डॉक्टरों से मुक्ति
14. दान के अचिन्त्य प्रभाव
15. धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)
16. धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17. निज अवलोकन
18. वसु विचार
19. वसुनन्दी उवाच
20. मीठे प्रवचन (भाग 1-6)
21. रोहिणी व्रत कथा
22. स्वप्न विचार
23. सद्गुरु की सीख
24. सफलता के सूत्र
25. सर्वोदयी नैतिक धर्म
26. संस्कारादित्य
27. हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1. अक्षरातीत
2. कल्याणी
3. चैन की जिंदगी
4. ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5. मुक्ति दूत के मुक्तक
6. हाइकू
7. हीरों का खजाना
8. संस्कार वाटिका

विधान रचना

1. कल्याण मंदिर विधान
2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3. चौसठऋद्धि विधान
4. णमोकार महार्चना
5. दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)
6. यागमंडल विधान
7. समवशरण महार्चना
8. श्री नंदीश्वर विधान
9. श्री सम्मेदशिखर विधान
10. श्री अजितनाथ विधान
11. श्री संभवनाथ विधान
12. श्री पद्मप्रभ विधान
13. श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)
14. श्री चंद्रप्रभ विधान
15. श्री पुष्पदंत विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
18. श्री नेमिनाथ विधान
19. श्री महावीर विधान
20. श्री जम्बूस्वामी विधान
21. श्री भक्तामर विधान
22. श्री सर्वतोभद्र महार्चना

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य

1. आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)
2. आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य जी)
3. आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)
4. कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. कर्म प्रकृति (सिद्धांत चक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)
6. गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7. चार श्रावकाचार संग्रह
8. जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9. जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)
10. जिन सहस्रनाम स्त्रोत
11. तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)
12. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13. तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)
14. तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15. तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)
16. तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17. धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)
18. धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19. ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)
20. नीतिसार समुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदी स्वामी जी)
21. पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)
22. प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23 पंचरत्न
24. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्र स्वामी जी)
25. मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)
26. भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी जी स्वामी)
27. भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)
28. मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्ति स्वामी जी)
29. योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबालचंद्र जी)
30. योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31. रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)
32. वसुऋद्धि
    - रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)
    - स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
    - पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)
    - इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
    - लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)
    - वैराग्यमणि माला (आ. श्री विशाल कीर्ति जी)
    - अर्हत प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)
    - ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33. सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगति स्वामी जी)
34. सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35. समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
36. समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37. सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)
38. विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय जी)

प्रथमानुयोग साहित्य

1. अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)
2. आराधना कथा कोष (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3. करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)
4. कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)
6. चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7. चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)
8. चेलना चारित्र
9. चंद्रप्रभ चरित्र
10. चौबीसी पुराण
11. जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
12. त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
14. धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15. धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
16. नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17. नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)
18. प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19. पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)
20. पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21. पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)
22. पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23. भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)
24. भद्रबाहु चरित्र
25. मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
26. महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27. महापुराण (भाग 1-2)
28. महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29. मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)
30. यशोधर चरित्र
31. रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)
32. रोहिणी व्रत कथा
33. व्रत कथा संग्रह
34. वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35. विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)
36. वीर वर्धमान चरित्र
37. श्रेणिक चरित्र
38. श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39. श्री जम्बूस्वामी जी चरित्र (श्री वीर कवि)
40. शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41. सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)
42. सम्यक्त्व कौमुदी
43. सती मनोरमा
44. सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45. सुरसुंदरी चरित्र
46. सुलोचना चरित्र
47. सुकुमाल चरित्र
48. सुशीला उपन्यास
49. सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बैरया)
50. सुभौम चरित्र
51. हनुमान चरित्र
52. क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
   - नवग्रह विधान
   - वास्तु निवारण
   - मृत्युंजय (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्त्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्त्रानाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
   - भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल))
   - शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
   - सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)
5. कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)
6. तत्त्वोपदेश (छहढ़ाला) (पुं. प्रवर दौलतराम जी)
7. दिव्य लक्ष्य (संकलन-हिंदी पाठ, स्तुति आदि)
8. धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
10. भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11. विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)
12. सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13. संसार का अंत
14. स्वास्थ्य बोधामृत

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1. अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
2. पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)
3. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
4. दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्वनंदनी, वर्चस्वनंदनी)
5. स्मृति पटल से भाग 1-2 (आ. श्री वर्धस्वनंदनी)
6. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
7. गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)
8. परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
9. स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)
10. स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
11. हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)
12. वसु सुबंध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद्र जी जैन)
13. समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')